धूप के पखेरू

[कविता - संकलन]

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करने की दृष्टि से प्रति वर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को संकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अखिल भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदनशीलता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् 1967 से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से प्रारम्भ किया गया था, वह अब प्रतिवर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और उससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् 1972 तक इस प्रकाशन-क्रम में 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं :

1. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी-संग्रह)
2. धूप के पखेरू (कविता-संग्रह)
3. रेजगारी का रोजगार (रंगमंचीय एकांकी-संग्रह)
4. अस्तित्व की खोज (विविध रचना-संग्रह)
5. जूनां वेली : नुवां वेली (राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में प्रारम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। इसी प्रकार शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ भेज कर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, ये प्रकाशन लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक संख्या में अगले प्रकाशनों के सहयोगी बनेंगे।

र. सिं. कूमट
निदेशक

शिक्षक-दिवस, 1973

प्राक्कथन :

शिक्षक-दिवस, १९७३ के उपलक्ष्य मे राजस्थान के सृजनशील शिक्षको का कविता-संकलन 'दूब के पखेरू' न्यास कर्ताओं और पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत है।

सात वर्षों के प्रकाशन काल मे रचनाओं के स्तर तथा स्वर में कितना व कैसा विकास-क्रम सध पाया है, इसे तो समीक्षक-जन ही बता पाएँगे; तथापि इस संकलन की प्रस्तुति के मूल में रचनाकारो को अधिकाधिक प्रतिनिधित्व देने और अनुभूतिगत विविधता सन्निविष्ट करने की दृष्टि अभिप्रेरक रही है।

इस संकलन मे वह सब कुछ लाने की चेष्टा रही है, जो शिक्षकोचित स्तर से देखा गया है : अनुभूति की तिक्तता से स्वत. फूट पडा है · अभिदर्शक के रूप मे जिसे सवेदनापूर्वक देखा गया है : बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप मे जो चलते-चलाते ही शब्दो में उभर आया है और जिसे साहित्य की गतिशील धारा के समकक्ष लाया गया है। स्वर सधे-बधे भी हैं और सद्य: प्रस्फुटित भी है।

जिनकी अभिव्यक्तियों से यह न्यास बन पाया है उनकी सृजनात्मक प्रतिभा के प्रति सम्पूर्ण विश्वास के साथ यह सकलन सुधी पाठकों, रसज्ञो तथा विमर्शको की सेवा में सादर प्रस्तुत है।

आशा है, इसका समुचित स्वागत होगा।

बीकानेर
शिक्षक-दिवस, १९७३

सम्पादक

अनुक्रम

कविता

गीत तथा ग़ज़ल

आदमी पत्थर नहीं

रवि

अपने ही महलो में सोता
अपने ही सपनों में जीता
धारा का मटमैला पानी
बहता बहता
यह गंगा का नीर नहीं
आदमी पत्थर नही

महकते गुलाब की
गीली पंखुड़ियों मे सोया
किरण करों की साया में
शबनम पिरोया
रूप रंगों के परिधानों में
जीवन के मीठे भावो में
असीम
यह डोर बँधा बिस्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

चलता जाता
अपनी ही राह बनाता
सतरंगी ताने-बाने मे
हँसता गाता
कहीं फैल गया
कही सिमट गया
सपनों की गीली धरती पर
कहीं फिसल गया
कोई व्यवसायी दफ्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

कहीं पीड़ा की चादर आँखों पर
कहीं वृक्षो की ऊँची शाखों पर
निष्काम
कहीं निर्विकार
कहीं सकाम दुर्निवार
कोई अन्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

शिक्षक वर

भ०रा० गाजरे

भावी पीढ़ी के
निर्माता !
कर्त्ता-धरता
देश के भाग्य विधाता !
शिक्षा का वर्तमान रूप
छात्र तेरा ही प्रतिरूप
किन्तु आज उसका
यह भयंकर स्वरूप..........
क्या तुझे सोचने को
बाध्य नहीं करता....?
तेरे मन मस्तिष्क का
नव मंथन
नव स्वर का
नव गुंजन
नव वीणा के
नये तारों को
झंकृत नहीं करता........?

एतदर्थ
जाग, उठ, चल
बदल और बढ़
निज लक्ष्य को
चरम सीमा पर चढ़
फूंक दे वह शंख
गूंज उठे जिसका रव
भारत की
पावन धरती पर
जीर्ण-शीर्ण, जर्जरित
विचारों को
परिवर्तित कर—
स्वतन्त्रता व समानता का
नूतन समाज
निर्मित कर
क्योंकि तू है
"शिक्षक वर" ।

●

एक सवाल

साँवर दइया

प्रयोगशाला में बैठे वैज्ञानिको !
तुम यह ज्ञात करने में लगे जुटे हो
कि अमुक ग्रह विस्फोट से
प्राप्त होने वाली ऊष्मा
ऊर्जा में परिवर्तित करने पर
असंख्य वर्षों तक उपयोग में लायी जा सकती है—
मानव-हित के लिए
अथवा सृष्टि विनाश के लिए।

लेकिन
कभी यह भी सोचा है तुमने
कि आदमी के दिल में छिपी घृणा
सृष्टि का विनाश कितनी बार कर सकती है ?
कि आदमी के हृदय में बहती प्रेम-सरिता
सृष्टि पर कितने स्वर्ग बसा सकती है ?

•

लेकिन डरता हूँ

खून तो मेरा भी गर्म है
लेकिन डरता हूँ
आस-पास जमी हुई बर्फ से !
[तुम मेरे चूल्हे में बर्फ डालकर
अपना चूल्हा जलाना चाहते हो—
मुझे ईंधन के रूप में इस्तेमाल करके !]

आवाज तो मेरी भी बुलन्द है
लेकिन डरता हूँ

आस-पास खड़े अवसरवादियों से ।
[तुम मेरे कन्धे पर बन्दूक रखकर
शिकार करना चाहते हो—
अपने हाथ खून से रंगे बिना ही !]

सीना तो मेरा भी फौलादी है
लेकिन डरता हूँ
अपने पीछे खड़ी बालू-दीवार से ।
[तुम मुझे शहीद बनाकर
मेरी प्रतिमा बनवाने की आड़ में
अर्थोपार्जन करना चाहते हो !]

झण्डे तो मैं भी उठा सकता हूँ
लेकिन डरता हूँ
आस-पास खड़े चमचों से ।

[तुम मुझे निकाल फेंकना चाहते हो—
दूध में आ गिरी मक्खी की तरह ।
और खुद शक्कर बनकर घुलना चाहते हो !]

इस सभ्य समाज में

अब तक औरों के ही हाथों में
झण्डे थमाये मैंने
झण्डा थामकर आगे नहीं चला मैं ।
[आगे चलने में खतरा रहता है
और खतरा मोल लेना समझदारी नहीं—
कम-से-कम इस सभ्य समाज में !]

अब तक औरों के ही सिरों पर
टोपियाँ रखी मैंने
टोपी पहन कर मंच पर नहीं आया मैं ।

बचपन को भुलाना मुश्किल है

जगदीश सुदामा

पल में हँसना, पल में रोना,
सुख दुख क्या है, किसने जाना ।
क्या मोल करे कोई इसका,
यह माटी ही चाँदी सोना ।।

हर बात भुला सकते हैं मगर,
बचपन को भुलाना मुश्किल है ।

जो अपना प्यार हमें देगा,
हम उसके संग हो लेंगे ।
जाओ, हम तुमसे रूठ गये,
अब तुमसे कभी न बोलेंगे ।।

हर दिल को मना सकते हैं मगर,
बचपन को मनाना मुश्किल है ।

इस आँगन में, इन गलियों में,
नाचेगा, धूम मचायेगा ।
वो क्या हाय ! वो गया अभी,
अब कभी नहीं वो आयेगा ।।

लोगों को भुला सकते हैं मगर,
बचपन को भुलाना मुश्किल है ।

गाँव जग गया है

महावीरप्रसाद शर्मा "जोशी"

(१)

गांव जग गया है !
कच्ची भीत
फूस के छप्पर
कँटीली बाड़ टूट गयी है।
स्टीम के चूने में
मकान बन रहे हैं
जातियाँ पार्टियों में बँट गयी हैं।
पुरोहित का बेटा
पतरे पोथियाँ रख
मिल में नौकर लग गया है
गाँव जग गया है।

(२)

चौधरी का बेटा,
(कालिज में है)
टेरालिन पहनता है।
ललाइन के ब्लाउज की
लम्बाई घट गई है
चम्पो लुहारिन को
सँडिल पसंद है
सुगिया घसियारिन
ओठ रंगती है
मटक कर चलती है
इसलिए
घास की कीमत बढ़ गई है।
बुधवा ग्वाला
नगर में दूध बेचता था
बस, वकील की पत्नी के साथ
भग गया है।
गाँव जग गया है।

गाँव जग गया है

महावीरप्रसाद शर्मा "जोशी"

(१)

गांव जग गया है !
कच्ची भीत
फूस के छप्पर
कँटीली बाड़ टूट गयी हैं।
स्टीम के चूने में
मकान बन रहे हैं
जातियाँ पार्टियों मे बँट गयी हैं।
पुरोहित का बेटा
पतरे पोथियां रख
मिल में नौकर लग गया है
गांव जग गया है।

(२)

चौधरी का बेटा,
(कालिज में है)
टेरालिन पहनता है।
ललाइन के ब्लाउज की
लम्बाई घट गई है
चम्पो लुहारिन को
सैंडिल पसंद है
सुगिया धमियारिन
ओठ रंगती है
मटक कर चलती है
इसलिए
घास की कीमत बढ़ गई है।
बुधवा ग्वाला
नगर में दूध बेचता था
कल, वकील की पत्नी के साथ
भग गया है।
गांव जग गया है !

क्यू..'

मोड़सिंह 'मृगेन्द्र'

ऐ दोस्त,
तुम मेरे पीछे खड़े हो
मुझे धक्का न मारो !
द्वेष व घृणा से
मुझ पर मत थूंको '
जरा देखो तो·······
मैं भी किसी के पीछे खड़ा हूँ !
और सुनो
तुम्हारे पीछे भी कोई खड़ा है !

जगत क्यू में खड़ा है
क्यू से चल रहा है
आगे पीछे वालों का ख्याल करो।
तुम्हारी जरा सी हरकत पर
कितने लोग, मुँह के बल
गिर पड़ेंगे !

यह न समझो
'तुम आगे हो ...!'
तुमसे आगे भी बहुत हैं।
'पीछे रह गये हो ?'
नहीं, तुमसे पीछे भी बहुत हैं !

ऐ दोस्त, तुम
विश्वी साकल की
एक महत्वपूर्ण कड़ी हो
धक्कम पेल न करो
जरा सोचो·······
और भी हैं जो सर्वगुण सम्पन्न हैं
पर तुमसे न विलंबित ।
ऐ दोस्त
आहिस्ता बोलो
ताक्त न तोलो
क्योंकि हम मानव हैं
और न पैदा करो
पहले से यहाँ कई दानव हैं।

गाँव जग गया है

महावीरप्रसाद शर्मा "जोशी"

(१)

गाँव जग गया है !
कच्ची भीत
फूस के छप्पर
कँटीली बाड़ टूट गयी हैं।
स्टीम के चूने में
मकान बन रहे है
जातियाँ पार्टियों में बँट गयी हैं।
पुरोहित का बेटा
पत्तरे पोथियाँ रख
मिल में नौकर लग गया है
गाँव जग गया है।

(२)

चौधरी का बेटा
(कालिज में है)
टेरालिन पहनता है।
ससाइन के ब्लाउज की
लम्बाई घट गई है
चम्पो सुहारिन की
मँहगी दमक है
मुनिया बनियाइन
ओढ़ रखती है
मटक कर चलती है
इसलिए
चाय की कीमत बढ़ गई है।
बुधवा [illegible]
शहर में कुछ देखता था
कल, मशीन की मण्डी में काम
कर रहा है।
गाँव जग गया है!

क्यू..!

मोड़सिंह 'मृगेन्द्र'

ऐ दोस्त,
तुम मेरे पीछे खड़े हो
मुझे धक्का न मारो !
द्वेष व घृणा से
मुझ पर मत थूको !
जरा देखो तो.......
मैं भी किसी के पीछे खड़ा हूं !
और सुनो
तुम्हारे पीछे भी कोई खड़ा है !

अनन्त क्यू में खड़ा है
क्यू से चल रहा है
आगे पीछे वालों का ख्याल करो।
तुम्हारी जरा सी हरकत पर
कितने लोग, मुँह के बल
गिर पड़ेंगे !

यह न समझो
'तुम आगे हो....!'
तुमसे आगे भी बहुत हैं।
'पीछे रह गये हो ?'
नहीं, तुमसे पीछे भी बहुत हैं !

ऐ दोस्त, तुम
विश्व की सांकल की
एक महत्वपूर्ण कड़ी हो
धक्कम पेल न करो
जरा सोचो........
और भी हैं जो सर्वगुण सम्पन्न हैं
पर तुमसे न विलंबित ।
ऐ दोस्त
आहिस्ता बोलो
ताकत न तोलो
क्योंकि हम मानव हैं
और न पैदा करो
पहले से यहाँ कई दानव हैं।

आलस्य नहीं–पसीना बहायेंगे

जगदीश उज्ज्वल

यह सर्द आह
यह करुण पुकार
कहाँ से उठ रही है
यह भीगी भीगी सांस
गले में असमय ही क्यों
घुट रही है
माँ
भारत भूमि
मातृ भूमि
तू
व्याकुल क्यों–

हम
आलस्य नहीं
पसीना बहायेंगे
अब खेत में आँधियां
और
मिट्टी नहीं
फसलें लहलहायेंगे
कार्यालयों में फाइलें नहीं
काम बजायेंगे
समय पर काम
केवल दाम नहीं
नाम कमायेंगे
कारखानों में
मशीनों का शोर नहीं
उत्पादन बढ़ायेंगे

तुम्हारे माथे पर ऋण नहीं
स्वावलम्बन का मुकुट धरेंगे
द्वेष और स्वार्थ नहीं
त्याग
और
राग की
महिमा गायेंगे
सरिता बहायेंगे स्नेह की
यदि जरूरत पड़ी
तुम्हारी आन के लिए
सीमाओं पर आग भी बरसायेंगे
तू
धैर्य रख
व्याकुल मत हो
हम
अपनी शक्ति पहिचान गये हैं
तुम्हारा गौरव
और
गरिमा
जान गये हैं

देश

राजेन्द्र बोहरा

फिर तुमने
पुकार लिया
देश !
देश""देश""देश""
      कहाँ है देश
तुम किस देश की बात कर रहे हो ?
देखो   कहीं इनमें तो नहीं है
                                                    वह देश

जिसको, खुद तुम्हें
एक अर्से से तलाश है !
एक को, मैंने
देखा है
अनाज के गोदामों में बन्द होते,
दूसरा खेल रहा
आँख मिचौनी
तह किये हुए कागजी मुद्राओं के साथ,
तीसरा,   जलती हुई बस के साथ
                                                    जल मरा,

चौथे के पाँव
टूटे हुए नुकीले शीशों ने लहूलुहान कर दिये
(और वह पाँव सादा कार्डबोर्ड पर
कैद किया गया है
अभी
कागजी अलबम में),
पाँचवाँ रवीन्द्र सरोवर के
बेदर्द इतिहास की सतह पर

तैर रहा है
और छठा
सातवाँ, सत्रहवाँ, सत्तरवाँ
सौ वाँ,
यही हैं वो देश जो मैंने देखे हैं !
और यह सब
तुम्हारे बनाये
तुम्हारे बताये नक्शों पर चल कर
पाया है मैंने
सही होगा अगर कहूँ
हम सबने !

इनके अतिरिक्त मुझे दीखा है
एक जंगल
धधकता हुआ, भागता हुआ
हाँफता हुआ
जंगल ।
जंगम
जिसकी जलती परिधि को
उलाँघ नहीं पाया मेरा खोजुँआ
अहसास !
दूर से देखा मैंने
खण्ड खण्ड जलती हुई आग
आग में झड़ती हुई
घनामानी पेड़ों की
कोमलांगी पत्तियाँ, टहनियाँ
और
सारी की सारी
जमीन से चिपकी हुई वनस्पतियाँ
हड्डियों के चटखने की
निरन्तर आवाजें, और आवाजें
पक्षियों के भुनते हुए
गोश्त की !

डिब्बों की
सभी बत्तियाँ
जल रही हैं, जिन्हें बुझाने से
करों की भीगी रेत से भरे
बोरे का भार
बहुत थोड़ा ही सही
मगर, कम तो हो सकता है
किन्तु मैं तब भी निष्क्रिय हूँ।
अभी मेरे सामने
चौराहे पर एक कार
मार कर टक्कर
होटल के छोकरे को
चली गई है
पुलिस मैन ने कार वाले
को सलाम किया है
और चोट खाये बालक की पीठ पर
डंडा जड़ दिया है
फिर भी मैं निःशब्द हूँ।
केदार के हाथों पिटकर
मर गये मजदूर की बीवी
चीखती है
उसकी चीखें ले तो जाती हैं मुझे
गवाह के कठघरे तक
मगर उसके बाद मैं निर्वाक हूँ।
मेरी यह निष्क्रियता
मेरा मौन
अकारण नहीं है!
पढ़ा है मैंने
सुना है बहुत, मेरे
रक्त में
राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप
युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम
हनुमान

का रक्त दौड़ता है।
इसलिये ही तो
मैं हूँ प्रतीक्षित
जाग जायें रक्त में मेरे,
छुरे सन्दर्भ
ताकि मैं
सचेष्ट होकर आग बुझा सकूँ,
सक्रिय होकर बत्तियाँ बुझा सकूँ,
सशब्द होकर चोट खाये छोकरे की
पीठ सहला सकूँ,
सवाक् होकर, विधवा को
न्याय दिला सकूँ
और, केवल
शो केस में सजी
आदमकद मूर्त्ति होकर ही न रहूँ
असम्बद्ध
असम्पृक्त
अननुभूत ।

मरी हुई नदी के लिए

भगवतीलाल व्यास

यह नदी मर गई है।
हाँ, नदी मर गई है
अब बहस फिज़ूल है कि
हम उसका उद्गम-स्थल ज्ञात करें
या उसके नाम के सही हिज्जों के लिए
भाषा-शास्त्रियों की समिति
नियुक्त करें।
कोई नारा, अनशन या जुलूस
इस मरी हुई नदी में प्राण-प्रतिष्ठा
नहीं कर सकता
नदी की दिवंगत आत्मा के लिए
कोई शोक प्रस्ताव पारित करें
या न करें
सरकारी दफ्तर [illegible] के बाद
बंद हों या सब खुले
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
कम से कम उसके लिए
जो मर गया है।
जानते हो कोई नदी
जब भी मरती है
अपने पीछे भूमि पर
एक लम्बी दरार छोड़ गई है
इस दरार पर बने पुल से
लोग गुजरते हैं
तो उन्हें वहाँ अपनी परछाइयों
शहर के कोढ़ों की रेंगती
दिखाई देती है

और उनके मुँह कई बार
जयकार की जुगाली कर चुके थे।
आज भी इस चौराहे पर लोग जमा हैं
और युद्ध से लौटी हुई
एक पूरी की पूरी यूनिट
गुज़र रही है उनके सामने से
वाहनों में बचा हुआ राशन,
टूटा सरंजाम और एक
साबुत हौसला सवार है।
पर चौराहे के गले में
टॉन्सिल उभर आये हैं और
वह कोई जयध्वनि नहीं कर रहा है
लोगों की फटी-फटी आँखें
असम्पृक्त भाव से मिलती हैं
वाहनों में सवार जवानों की आँखों से
और वहाँ लिखी बेशुमार कहानियों को
बिना पढ़े ही लौट आती हैं।
मेरे देश के बालकों ने अब तक
नेताओं के उलटे चित्रों वाली
किताबें पढ़ी हैं।
कब पढ़ेंगे वे जवानों की आँखों में
लिखी कहानियाँ
और कब चौराहे पर जमा भीड़
सही आदमी की जय बोलना सीखेगी?

कुण्ठित धारणाओं की
सड़ी-गली आस्थाओं की
लोग कुछ अर्थी उठाये,
या घिसे-पिटे विचारों का
कुछ पुरातन सस्कारों का,
जनाज़ा अपने कन्धे पर रखे
थके हारे सभी, बोझ से बिल्कुल दबे,
व्यर्थ यूँ ही घूमते हैं,
सोचता हूँ !
मौत के निश्चित समय पर
लोग अपने प्रियजनों को
पिता और पुत्रों को
चढ़ा देते हैं चिता पर
और मिट्टी में मिला देते हैं उनको
कोई तो कारण है !
रूढ़ियों की यह अर्थी
यह जनाजा
क्यों जला नही सकते ?
क्यो भूमि में दबा नही सकते ?
निरर्थक तर्क का
कोई उल्लू चीखता है
इस प्रकार मुझ को कोसता है
"अरे ! पागल !!
रूढ़ियों की यह कोई अर्थी नही है
संस्कारों की सड़ती हुई मय्यत नहीं है
यह तो है अपने अतीत का गौरव
अतीत का गौरव !"

शिक्षक दिवस पर

बजरंगलाल विकल

नवयुग के ऋषि को
अन्याय, शोषण के
फांसी के फन्दे पर लटका कर
आज हम कर रहे हैं,
अपनी वन्दना
अपनी सम्माननीय परम्परा को
अक्षुण्ण रखने के लिए
'गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु
गुरु देव महेश्वर
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म
तस्मै श्री गुरुवे नमः,
हमारी श्रद्धा और भक्ति के
पुण्य गान मृत्यु की
समाधि पर गाये जाते हैं
जीवित रहते भुलाये जाते हैं
स्मारक और मूर्तियाँ
इसीलिए तो बनाये जाते हैं
जो रक्त की बूंद बूंद चुका कर
अस्थि मज्जा को खपा कर
दधीचि के समान
देवत्व की रक्षा के लिए
दे रहा है अपने अस्तित्व का दान
उसे पुरस्कार नहीं
इन्द्र का वज्र संकल्प चाहिए
विषमता के वृत्रासुर को
विध्वंस करने के लिए
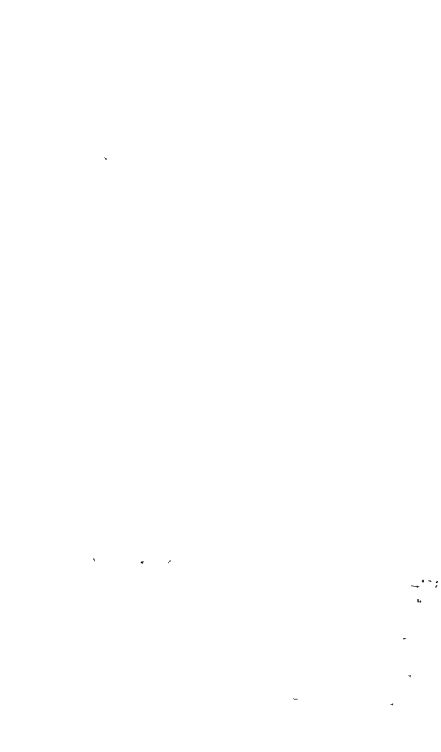
मैं अध्यापक नहीं हूँ

सोहनलाल पारीक

मैं गत बीस वर्षों से
पढ़ाता आ रहा हूँ,
छात्र पढ़ रहे हैं—
काफी पढ़ गये हैं
और आगे बढ़ गये हैं।
बढ़ते जा रहे हैं
आदर पा लिया है
आदर देते हैं
मिलने पर,
चरण छूते हैं
प्रणाम करते हैं
कहते हैं—
"आगे बढ़ा हूँ
आपके आशीर्वाद से,
मुझे कोई सेवा का अवसर दो।'
बस।
पुन: देता हूँ आशीर्वाद—
जो मेरे पास है।
अध्यापक का फर्ज निभा कर भी
अध्यापक नहीं हूँ
क्योंकि—
हाजरी नहीं भरता
पाठ बिन्दु नहीं लिखता
विशिष्ट उद्देश्य ध्वनित नहीं करता
अध्यापन प्रणाली
व छात्र-अध्यापक सिद्धान्तों को

खाना पूरी नही करता।
पाठन की सहायक सामग्री
सामने रहती है,
किन्तु !
डायरी मे लिखने मे
सदैव चूक करता हूँ,
गृह कार्य रोज देकर
चैक कर भी—
कागजो पर रिकार्ड नही रखता,
मूल्याकन वर्ष मे कई बार होता है
किन्तु !
योजना बनाकर डायरी मे
प्रदर्शित नहीं करता।
मन मे समझता हूँ
इकाई योजना, पाठ्य विभाजन
अध्यापन प्रणालियो से
खूब परिचित हूँ
बीस वर्षों मे यही तो सीखा है !
किन्तु
कागज पर न लिखकर
मन के पट्ट पर सदैव लिखता हूँ
इसीलिए
निरीक्षक महोदय के लिये
मैं अध्यापक नहीं हूँ।
मेरा साथी
सब कुछ लिखना ही लिखता है
सब खाना पूरी करता है
अध्यापन के उद्देश्य,
पाठ्य बिन्दु
अविभक्त इकाई योजना
सभी से पूर्ण अनभिज्ञ है
किन्तु !

किताब से नकल कर
कागजों का
पेटा अवश्य भर देता है।
इसी तरह
आन्तरिक मूल्यांकन के सभी प्रपत्र,
परीक्षा प्रश्न पत्र के उद्देश्य मान,
विषयवस्तु मान,
प्रश्नों के प्रकारों का मान
ब्लू प्रिंट सहित
टेबुल पर बैठ कर
योजनानुसार
पूरे खाली भर देता है।
निरीक्षक के सामने कुछ नहीं बोलना
सब कुछ लिखा लिखाया
सामने धर देता है
पूरा 'माडनेवार' है
जैसा कहा जाता है
वैसा 'माडवर' तैयार कर देता है।
सर्वश्रेष्ठ अध्यापक को,
राष्ट्रपति पुरस्कार के लिये
निरीक्षक जी ने पूरी सिफारिश की है।
नाम आगे पहुँच गया है
प्रमाण पत्र छप गया है
इसका नाम भी उस पर
चढ़ गया है
क्योंकि—
वह मोडनेवार है।

बसन्त

ओमप्रकाश

पलाश के वन में आग लगा गया बसन्त
सारे आसमान को सुलगा गया बसन्त
यादों के गुलाब से
सांस - सांस महकी
रूप की धूप से
मौसम की देह दहकी
संयम की दीवार को ढहा गया बसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया बसन्त
अधरों पर उभरे
अबोले बोल प्यास के
धड़कनों में गूँजे
गीत मधुमास के
दर्पण की नजर को उलझा गया बसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया बसन्त
दर्द की दुल्हन खड़ी
महावर रचाये पांव में
पीड़ा का सूरज ढला
आंसुओं के गांव में
मन में एक ज्वार सा जगा गया बसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया बसन्त

अपने ही मन से

बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ

सुधियों के व्यूह में
अभिमन्यु सा
फँसता चला गया हूँ

मुट्ठी भर शब्दों को
हवा में उछालता रहा
गीतों के अक्षरों को
व्यर्थ में ढालता रहा

भीड़ भरे मंच पर
गीत गाते-गाते
अवसर छलता गया हूँ

बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ

पूरा जमा दांव
तोड़ गया कोई
दर्द का डोला रहा
छोड़ गया कोई

अरण्य वन में
कस्तूरी मृग सा
भटकता चला गया हूँ

बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ

•

क्षणों की कतारें

भरतो राबट्‌स

आज सुबह उठते ही
एक टुकड़ा धूप का,
मुझे निगल गया,
क्चिन ने धुआँ भर दिया जेबों में
ड्राइंग रूम की खिड़कियों से,
ठिठुरते क्षण अंदर चले आये।

बहुत सी रेत है,
और अभी एक केक्टस ने जन्म लिया
किसी अनुभूति का बोझ
मेरा अस्तित्व सह नहीं पाता है
कैसे हैं यह क्षण ?
पता नहीं असंगतता क्यों चुभती है ?
समझौते की क्षमता
केले के छिलके पर फिसलती
चली गई।

असंतृप्त स्थितियाँ— कगारों पर खड़ी हैं
समय बदल गया है,
अब किसी ने बैसाखियाँ छीन ली हैं,
दराज से निकाल के
एक खुशी जो मुझे दी गई थी,
अंधेरे में बैठे एक गिद्ध ने छीन ली
पर क्या……!
माँस की बोटियाँ भी तो कहती हैं,
और किसी 'इज़्म' के अन्तर्गत
एक कहानी बनती है नई।

बिजली के तारों सा नंगापन,
छू जाता है हर मनः स्थिति को
बहुत से पर्दों को उठाना होगा,
तभी एक सूरज निकलेगा
एक कटोरी दूध है,

कई सांप हैं - बबूल के पेड़ के पीछे
एक उदास पौने चांद की
मनः स्थिति कोई नहीं देखता
आज लगता है शब्दों को मुट्ठी में,
किसी ने कसके दबोच लिया है
स्थूलकाय रात रोती है,
दबे दबे स्वरों मे

o

धूप के पखेरू

विश्वेश्वर शर्मा

आँगन में आ बैठे
धूप के पखेरू

सारी आवाज़ें
चिचियाई-सी
रोशनी नहाई-सी

पिघल-पिघल गये कई
आप ही सुमेरू

स्वप्न की सुराही मे
स्वर्ण रस वारुणी
रास करे लीला विस्तारिणी

रत्न-रत्न फेंक गया
कौन धन बिखेरू ?

माटी की गंध

फैली रे,
माटी की गंध ।

एक एक रंध्र पी रहा है ।
क्षण क्षण आयुष्य जी रहा है ।

मैली रे ।
माटी की धुंध ।

सांस रचा समय सतत् ।
प्यासा यह सद्-सवत् ।

खेलो रे ।
वर्षा निर्बन्ध

इन लोगों से मेरा कोई वास्ता नहीं
फिर भी ये लोग मेरे हैं
और इन्होंने कुछ दिया ही है
चाहे वह भ्रम ही क्यों न हो
इन से क्या माँगता था ?
यह बात अलग है
यों बहुत कुछ है
जो
कुछ नहीं होने से बेहतर है
और उसकी उपयोगिता से
मुझे इनकार नहीं
लेकिन क्या विचारता था
यह बात अलग है
मानता तो हूँ, जी रहा हूँ
चाहे जहर ही सही
लेकिन पी रहा हूँ
आखिर कुछ खाता ही हूँ
चाहे धोखा हो, ठोकर हो
मुझे क्या कुछ भाता था
यह बात अलग है
वैसे सब कुछ अलग है
मैं और मेरापन
तुम और तुम्हारापन
यह दुनिया और दुनियापन
और पने का मैं अभ्यस्त भी हूँ।
फिर क्या सुहाता था ?
यह बात अलग है

दोपहरी

अर्जुन 'अरविंद'

लेट गयी
दोपहरी
आँगन मुंडेरे

कमरे में फूट पड़ा कैसा यह ज्वाल ?
अलसायी आँखों ने कर दी हड़ताल
क्रूर हुआ भावों का बढ़ता उबाल
उमसाया अंग अंग, उभरे सवाल

फूट रहे
टहनी के
धूप भरे घेरे

छायाएं कैद हुईं सध्या की जेल में
लपटों ने बाजी ली जीवन के खेल में
ऊँघ रहे वृक्षों के डंठल बन प्रहरी–
किरणों के घुसपैठी पहुँचे खपरैल में

अबर ने
तान दिये
धरती पर डेरे

गिरवी है सूरज के, अधरों की प्यास
लौट गयी मंडराती बदरी उदास
बाहर और भीतर भी बिखरा अलगाव–
प्राणों में उठती है धीमी निश्वास

आशा के
टूट गये
जंगल घनेरे

मरने की खुशी में

म

यह जो मैं हूँ
मैं नहीं हूँ
महज होने का स्वांग
विश्वास के मुखौटे में।
भेड़िए के जबड़े
और मुर्गे की बांग
मैं मजबूर किया गया
कि ऐसा करता।
आखिर कब तक
दुर्दिनों की शराब पीकर
सूने अँधियारे गलियारों में
भटकता फिरता।
खाने को खाना समझकर
पुट्ठे या रेत चबाया करता।
जीवन भर जिन्दगी के चक्रव्यूह से
जूझता रहा
और""हर बार हर हरा कर टूटता रहा।
तमाम इन्सानी रस्म-रिवाजों के बावजूद भी
जब
दो वक्त रोटी
ताजा धूप का कोई टुकड़ा
हथेली भर हवा ताजी
मुट्ठी भर आसमान
और तो और
होठों भर मुस्कान
भी न मिली
तो एक दिन मैंने
अपनी आत्मा को गोली मार दी।

और""लाश
देश के उन हिटलरी हाथों में सौंप दी
जिन्हें इसकी बेकरारी से प्रतीक्षा थी ।
सचमुच उस दिन मैं मर गया
और मरने की बेहद खुशी में
एक ज़ोरदार ठहाका लगा गया ।

आदमी ऐसा नहीं हो सकता !

दिन भर
एक मूर्तिकार की तरह
तुम !
मेरी प्रतिमाएँ गढ़ा करती हो
वैसे तुम कायर हो
भीड़ में भागती हो
पर स्याह रात के सन्नाटे में
जब भी मैं अकेला होता हूँ
जाने कहाँ से
अट्टहास करती हुई आ जाती हो
और इङ्गित करती हो
मेरी उन प्रतिमाओं की तरफ़
उफ़ !
कितनी विकृत, वीभत्स और कुरूप लगती हैं
मैं चौंक उठता हूँ
तुम झूठ बोलती हो
अनर्गल बकवास करती हो
ये मेरी प्रतिमाएँ नहीं हैं
इनमें मैं नहीं हूँ
मुझे कचोटो मत
नोचो मत
मैं आदमी हूँ
और 'आदमी ऐसा नहीं हो सकता' !

प्रतिज्ञाओं का प्रश्न

ठहरो !
मुझे भी साथ चलना है
वहाँ उस आंगन में
जहां शरद पूर्णिमा है
श्री है…समृद्धि है…स्निग्ध चांदनी है
शान्ति की अणिमा है
उस हिंसक पशु से
जो अपनी बेजा हरकतों से
हरदम रचता रहता है
काली कुटिल कृतियां
ओछी और संकुचित मनोवृत्तियां
एक दहलाने वाली आतंक भरी दुनिया
जब यह चरम सीमा पर होता है
क्या कर सकता हूं
बेबस होकर हार जाता हूं
और…फौरन अपना चेहरा बदल देता हूं
और केवल अपराधों के अतिरिक्त
कुछ नहीं कर सकता हूं
कुछ भी तो नहीं कर सकता हूं
मैंने बार-बार चाहा है
बारम्बार चाहा है
और हर बार अहर्निश संकल्प किये हैं
कि कब इस भयानक भंवर से
मुक्त हो जाऊंगा
आगे बढ़ जाऊंगा
और
गति—प्रगति
उत्थान…कल्याण की ओर दौड़ जाऊंगा
पर हर बार

सुबह से शाम हो जाता है
और""शाम से सुबह !
संकल्प की धज्जियाँ
विषभरी हवाओं में
जाने कहाँ खो जाती हैं
भाग्य और भविष्य
धरम और करम
भी चुप्पियाँ साधे हैं
मुझे नहीं मालूम
देश के भी कौन से
कानून और कायदे
इसके पहले कि
मेरी चीख ज्वालामुखी बन जाय
मैं फिर-फिर आवाज लगाता हूँ
कि ठहरो
कि अभी भी
लगातार २५ वर्षों से
टूटती हुई प्रतिज्ञाएँ पूरी करना है
जन्म की सार्थकता की गवाही
इस देश को देना है
मुझे भी चलना है
वहाँ, उस आँगन में
जहाँ शरद पूर्णिमा है !!

रेजगारियों का विद्रोह

गोपालकृष्ण लाटा

एक रोज
सभी रेजगारियाँ
इकन्नी,
दुअन्नी,
चवन्नी,
और अठन्नी ने
मिलकर
आवाज़ दी।
(जैसे कि कोई स्ट्राइक बैलट, ताजा ताजा ही निकला हो)
शिकायत की तरज में,
बड़ी ही गरज में,
चवन्नी
चीखने लगी
"कभी चलती थी,
मेरी पावली पांच आने में"
आज अफसोस है
कि भिखारी भी
पूछता नहीं।
क्यों न सामूहिक स्वर में
होने का आवाज में
क्यों न ताना के जकड़े पर्दे
हिला दें
बड़े से बड़े लाट के।
हैं भी
क्या सिक्के हैं?
जिनका सिक्का चलता नहीं है!

न बोझ
न दाब
न आवाज़
न कोई स न न न
न कोई ट न न न
ज्यों ही पड़ी
आवाज निकली
(आवाज़ निकली)
ट स
सभी रेजगारियाँ चिल्ला पड़ीं
आवाज निकली
वही टस, टस
मुझे लगा या सुना
टांय टांय फिस
रेजगारियाँ चुप हो गयीं
पर टप्पा न पड़ा।

आजानु भीम भुजाएं
किंकर्तव्यविमूढ़,
हताश,
आबद्धपाश,
सायं फुसफुसाती हैं—
कैसे करें अवमानना
युग-युधिष्ठिर की ?
क्या कहें—
समय परिवर्तनशील
या
समयानुसार परिवर्तितशील ?

इस पर भी कोई अगर गलती से गाली दे
उँगली उठा ही दे……तो
बुरी बात सुनना और बुरी चीज देखना,
बहुत बुरी बात है।
बहरे बन जाइये…… अन्धे हो जाइये
बापू के प्रवचन को यों ही निभाइये।
चाँदी की लाठी से रास्ता टटोलिये
कैसी भी अँधेरी हो,
अटक से कटक तक बेखटक जाइये
आइये! आइये!!
रजत की जयन्ती को समझकर मनाइये
चाँदी बनाइये।

कैक्टस

आकर्षक,
निष्फल,
और बस।
उगते थे बंजर पर,
कभी कहीं घूरों पर।
सजे आज गमलों में
ऊँचे कँगूरों पर।
बाहर के लोग जब, इन्हें देखते हैं, तो
हर्षित हो कहते हैं—
कितना है कद्रदान
यह स्वतन्त्र हिन्दुस्तान।
ये भी कुछ फूल गये
हमारा भी नाम हुआ
यह तो सभी जानते है—इनसे क्या काम हुआ।
नीरस थे, हुए सरस।
और…बस? जी हाँ बस,
कैक्टस ही कैक्टस।

पर दोस्तों !
गल्ती हमारी है
क्योंकि हमने अपने पेट में सैकड़ों सूराख बना लिए हैं
और उन सूराखों से हमारी अतृप्त इच्छाएं
दिन रात जीभ लपलपाती हैं
और हम गलत दिशा में अपना रथ मोड़ देते हैं
फिर हर घण्टे, हर मिनट और हर क्षण
कई-कई आवाजें जनमती हैं एक साथ
और कीड़ों की तरह कुलबुलाती हैं
शोर इतना तेज होता है
कि पूरा का पूरा माहौल काट खाने को दौड़ता है
और हम आवाजों के जंगल में खो जाते हैं

युद्ध

[illegible] कृष्ण पालीवाल

यह लड़ाई क्यों होती है
क्यों इन्सान हैवान बन कर
आदमी का लहू पीने लगता है
एक बार अपनी कलम से
यही पूछना चाहता हूँ मैं
क्यों आदम का बेटा
आदिम ही रहना चाहता है
अगर इन्सानियत हमारी पूँजी है
तो क्यों नहीं हम
अपने नकाबी चेहरों पर
तेजाब छिड़कें
क्यों नहीं पत्थरों से
'ताज' तराशें
क्यों नहीं बांसुरी की
टेर सुनाएँ
क्योंकि ये शहर
एक दिन श्मशान बन जायेगा ।
ओ देश तुझे क्या हो गया
कहाँ गई तेरी संस्कृति
कहाँ गए तेरे आचार-विचार,
आदर्शों के गुलाबी फूल
किसने तेरे चेहरे पर
चुपड़ दिया कोलतार
तुझे सौगन्ध है गंगा की,
कश्मीरी शबाब की

कुछ लोगों के दिल
रेगिस्तान से होते हैं
जहाँ फूल तो क्या दूब भी नहीं मिलती
ये लोग मरने के बाद
अपनी पूँजी की रखवाली के लिये
साँप बनते हैं
कुछ अपनी मस्ती में जीते हैं
उन्हें पीने को चाहिये
चाहे घर के बच्चे भूखे मरें
कुछ दुम हिलाने में ही
अपना गौरव समझते हैं
कुछ मेरे जैसे भी हैं जो रोते हैं दूसरों के रुदन में
दुनियाँ हमें पागल कहती है
मैं अकेला हूँ

एडजस्टमैन्ट

श्रीमती वीणा गुप्ता

थर्ड क्लास के डिब्बे में
इन्सान के ऊपर इन्सान
इतना ही नहीं
जानदार के ऊपर बेजान
सामान ।
जगह की कमी
टिकटें अधिक
सीटें कम
या यात्री अधिकतम
बिना टिकिट करते सफ़र
सुबह से हो जाता महर
लड़ते
झगड़ते
एक दूसरे पर झपटते
रौब गांठते
फिर भी
एडजस्ट करना पड़ता है
क्योंकि
यह सफ़र है
और सफ़र तो करना ही है ।
जीवन भी एक सफ़र है
ट्रेन के सफ़र की तरह
जहां
वे लोग दुखी रहते हैं
जो नहीं कर पाते एडजस्ट

और वे सुखी रहते हैं
जो कर लेते हैं एडजस्ट ।
ट्रेन के सफर में भी
जीवन के सफर में भी ।

तलाश

हर मोड़ पर
सफर में
जिन्दगी के
आजकल
करवट बदल लेती है
जिन्दगी ।
नई दिशा उठा लेती है
शरीर का बोझा
दो कदमों के सहारे
और
हम पाते हैं
अपने आपको ऐसी जगह
जहाँ से
नजर भी नहीं आते किनारे ।
तब बहुत दूर निकल जाते हैं
किनारे की तलाश में ।
पर
कुछ नहीं आता हाथ में ।
क्योंकि—
मन्जिल हमारी जिन्दगी की
अनजान है ।
किनारों से न अपनी जरा भी
पहचान है ।

सफेद चादर के नीचे

दूर बहुत
कोहरे की चादर ओढ़े
पेड़ पौधे
पवत शृंखलायें
धुंधलाये से शरीर
कितने सुन्दर लगते हैं
मन को भाते हैं
सुबह ही
निकल जाते हैं
सैर करने को
तब हम
नही देख पाते
कंटीले झाड़
ऊबड़ खाबड़ टीले
मानवता के नाम की कालख
क्योंकि—
ये सब आंखों से दूर हैं
और इन सबका
छिपा होता है रूप
कोहरे की सफेद चादर के नीचे ।

मत्स्य तंत्र के विरुद्ध ?

मनमोहन झा

हकीकत तो यह है ...ओ मेरे चर्बीदार चौकन्ने भाई !
कि तुम
अपने सिवा किसी खुदा को खुदा
और आदमी को आदमी नहीं समझते
वरना मैं तुम्हें सलाह देता
कि तुम
खुदा को उसकी रहमदिली और भोलेपन के लिए ...और
आदमी को उसकी नरमदिली और बदबूपन के लिए
धन्यवाद दो
धन्यवाद दो इस सड़ियल व्यवस्था को
कि तुम बाकायदा जिन्दा हो
अपनी तमाम अहमक हरकतों के बावजूद
और बावजूद
अपने दम्भ....अपनी वासना
अपने अविश्वास....अपनी अनास्था के
मटरगश्तियों के साथ
वरना
जब एक औसत आदमी
रोशनी में खड़ा होकर अपनी मुट्ठियाँ कस लेता है
तो सारी हवाएँ उनमें कैद हो जाती हैं और
सारा माहौल पालतू पिल्ले-सा दुमियाने लगता है
लेकिन हकीकत तो यह है मेरे बन्धु !
हवाएँ इन दिनों सिर्फ तुम्हारे लिए बह रही हैं
और डरपोक सूरज इन दिनों
तुम्हारे आदेशों से जलता और बुझता है

सुबह होने से पहले तुम्हारे दरवाज़े पर प्राकर
एक चापलूस सलाम टाँगना....और
दिन ढलने के बाद तक हड्डीतोड़ दौड़ धूप करना
मुझे सूरज की इस कायरता पर
अनायास ही अधिनायक एलेक्ज़ेन्डर से प्रातंकित
एरिस्टोटल का उदास चेहरा याद आ जाता है
फिलहाल
यह दूसरा प्रश्न है कि
एलेक्जेन्डर किस कुत्ते की मौत मरा था ?
और क्यों उदास एरिस्टोटल आज भी अधेरी गलियों में
गर्दन लटकाए भटकता नज़र आ सकता है ?
फिलहाल
एक मानवीय तंत्र में
तुम्हारी और तुम जैसों की वही जगह होनी थी
जो जूतों की होती है
एक पारम्परिक भारतीय घर में
लेकिन हकीकत तो यह है मेरे बड़े भाई !
कि इस दास प्रथा ने तुम्हें कितना चमकदार
शिरस्त्राण बना दिया है
तुम
लाल हरफों वाली नीली किताब पर
काली बन्दूक जमाकर सफ़ेद खरगोश-से निरीह
किसी भी आदमी की खुले आम हत्या कर सकते हो
हत्या (?) नहीं........शिकार !
तुम्हारे कृतज्ञ कवि (?) न्यायाधीश (?) अखबारनवीस (?)
और व्यावसायिक प्रचारक
तुम्हारे निशाने की प्रशस्तियाँ प्रकाशते हैं
एक मगरमच्छ की मानिन्द तुम आज़ाद और समर्थ हो
इस जलाशय में
तुम्हारे दबदबे की दहशत से दबा आम आदमी
हकीकत में हरगिज़ ही आदमी नहीं है
वह तो महज़ एक मछली है

मछली : जिसे कोई भी बड़ी मछली
कभी भी निगल सकती है
इस जलाशय मे
तुम्हारा राज है
क्योंकि
जल मे रहना मछली की विवशता है
दहशत मे जीना जलाशय की सहजता है
ऐसे मे—
कवि और कविता
मेढ़क और उसकी टरटराहट से अधिक
और क्या हो सकती है ?
पिछले कई वर्षों से यह सवाल मुझे सालता आ रहा है
कि मरे साँप जैसी चीज
जिसे तुम
नैतिकता/आदर्श/संस्कृति/समाज/जनतंत्र
जैसा मीठा नाम देते आ रहे हो
क्या वह एक जलाशय है ?
क्या आम आदमी
महज एक मछली है ??
क्या जलाशय ही हमारी नियति है ???
खौफनाक दलदलीय तटों से घिरा
शान्त सतह के भीतर दहकता
विवश जलाशय !

श्रेणी भेद

भगवतीलाल जोशी

'काल'
अवर्गीकृत शब्द नहीं
क्योंकि 'अकारन' है,
उसी तरह
'इन्सान' शब्द भी बेहाल है,
अर्थात्
जिसका नहीं काल है
उसी के लिए यह 'अकाल' है
और
जिसके लिए अकाल है
वही निहाल है,
(फिर कहते हैं कुछेक कि वो मर रहे हैं,
किन्तु हम देखें क्यों उधर ? जबकि हमारे
पास दया नहीं है)
फैमिन, परमिट, शक्कर-नाज का कोटा
हो कर देगा माला-माल
इस साल
चाहे काल हो या अकाल
और जो दिन में नहीं छीन सकेगा बाजी
वह जीत लेगा फायलों में
या पुलिस के आगे-पीछे होकर
रात में
बात ही बात में
मार देगा किसी न किसी को
मुठभेड़ में,
और, ऐसे कितने खूब हुए

होते रहेंगे
जनतंत्र का पाठ अध्यापक पढ़ा रहे
पढ़ाते रहेंगे·········
मगर ·········
असमानताओं के समान
बहकती क्यों है चाल
इस साल
बराबर हैं काल······अकाल······

o

कांच की गाड़ी

प्रेमचन्द सुतीन

जिन्दगी है कांच की गाड़ी
जो समय की सड़क पर दौड़ रही है।
मन में लगी लिप्साओं की–
बेशुमार सवारियों को छिपा कर,
ढो रही है।
मन मेरा,
(जो कि ट्रैफिक इन्सपेक्टर है)
महसूस भी करता है।
पर न जाने कौन से भय से,
चालान नहीं करता है।
शायद सोचता होगा,
छिपी हैं सवारियाँ,
कौन देखता होगा।
जब कि गाड़ी है कांच की–
आर पार हर कोई देख लेता है।
क्रूर हँसी हँस कर भी मसोस लेता है
और— – ….
सवारियों के बोझ से बिना मंजिल पाये ही–
गाड़ी का धुरा टूटता है
फिर मन मेरा
गाड़ी के मलबे को–
बुढ़ापे के अँधेरे में
घसीटता है।

जन मन को कंचन कर लूँ

मासूम चेहरों पर छाया है अँधेरा,
मौसम से पहिले बुढ़ापे ने घेरा।
आनन्द पराजित मातम से हुआ है कि–
जन्म से पहिले मृत्यु का बसेरा।
अँधेरा हरूँ तो ऐसे हरूँ।
दीपक बनूँ हर घड़ी मैं जलूँ।

पीढ़ी दर पीढ़ी से देखा यही है,
लज्जा के वसन पर पैबन्द दिया है।
जीवन बेशर्मी में मजबूर हुआ है कि
जनम से पहिले गरल पी लिया है।
जीवन बनूँ तो ऐसा बनूँ।
गरल पी उसे भी अमर मैं करूँ।

आना व जाना युगों से रहा है,
धरा की तपन से मुलसता रहा है।
बालुई इरादों में ऐसा पका कि–
वायु का झौंका लिए जा रहा है।
कण बदलूँ तो ऐसे बदलूँ।
जन मन को कंचन करलूँ।

ओढ़ी है चादर पुरानी नहीं है,
बदला है रूप जवानी नहीं है।
लड़खड़ाते कदम बढ़ जाएँ ऐसे कि–
मंजिल बड़ी है, दूरी नहीं है।
रूप सजूँ तो ऐसे सजूँ।
विश्व कर्मा की कला मैं धरूँ।

बना दे चूहा

पढ़ा है, सुना है,
पुनर्जन्म होना है भगवन् तेरे राज में।
अगर सच है तो उठाले मुझको।
बना दे चूहा—

धन्यवाद तुमको।
भारत की धरती पर गोदाम भरे पड़े हैं।
भूल गये वे, जो अभावों से लड़े हैं।
मैं क्यों भूल करूँ?
सोता है वह खोता है।
इस जमाने में–
सच और ईमान रोता है।
अच्छा!
समझ गया मैं–
आपको भी कुछ चाहिए।
भिजवाता हूँ मक्खन की टिकिया,
लेकिन अब तो बताइए!
[क्या?
चूहा!!]

o

तब तुम बोलते हो

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

मुर्गों ने सभा कर
प्रस्ताव पास किया—
इन्कलाब जिन्दाबाद
पुराना सूरज मुर्दाबाद;
अब हम फिर से—
पुराना सूरज नहीं उगने देंगे।
क्योंकि सूरज—
हमारे ही बोलने से उगता है।
और कोई मुर्गा—
सबेरे नहीं बोला।
सूरज बदस्तूर उगा
मुर्गे बौखलाये।
दिन के दूसरे पहर—
शहर के पटान पर—
वे सब फिर जमा हुए—
एक साथ चिल्लाए—
हम सब मिल कर—
नया सूरज उगाएँगे—
कुकड़ूँ कूँ·········कुकड़ूँ कूँ·········।
इन्कलाब जिन्दाबाद।
और फिर गर्दन उठा,
देखते रहे दिन भर—
सिर पर तना हुआ—
नीला आकाश।
लेकिन—
एक भी नया सूरज नहीं उगा।
काश ? कोई—
इन मुर्गों को समझाता—
सूरज तब नहीं उगता—
जब तुम बोलते हो;

जब सूरज उगता है—
तब—
तुम बोलते हो।

अनुभूति

मेरे बाल बहुत काले हैं,
बहुत लोग—
मुझको—
बच्चा कहने वाले हैं।
मतलब यह कि मुझे—
अभी बहुत जीना है।
अपनी ही चादर के—
पैबंदों को सीना है।
मित्र जो बना—
इन कंधों पर चढ़ गया,
भीड़ में अनायास—
बहुत बड़ा बन गया।
वजन किसी का था,
कंधा किसी का टूट गया,
शिकायत जिससे की—
दाँत दिखा रूठ गया।
आँखे जिसे दिखाऊँ,
देखते ही फोड़ देगा।
समझाने बैठूँ तो—
हाथ-पाँव तोड़ देगा।
सहते सहते, सीना—
छलनी बन चुका है,
उपदेश सुन—सुन कर,
मेरा मन भर चुका है।
जहर! बहुत पी चुका,
अब, अधिक नहीं पीऊँगा,
दुनियाँ को, इसलिये—
पसीना नहीं दूँगा।

महादेव नहीं हूँ, आदमी का बच्चा हूँ,
इसलिये जब आदमीयत—
अल्पमत में रह गई है—
अक्ल से काम लूँगा।
जीवन के शेष दिन—
गधों में गुजारूँगा।
उन्हीं से दोस्ती कर,
उनको पुचकारूँगा।
अपना भी भार—
कभी—
उन्हीं पर खिसका कर
चैन की सांस लूँगा।

हल हो गई है समस्या

बहुत एक हो गया है
भाषाई दृष्टि से—
मेरा देश।
उत्तर से दक्षिण
और
पूरब से पश्चिम तक
उसने अपना ली है—
पेट की भाषा।
एक साथ चिल्लाने लगा है वह
जोर से—
भूख, बेकारी, रोटी, रोजी!
कितनी विकसित—
सचमुच हो गई है—
भावात्मक एकता
और—
हल हो गई लगती है—
भाषाई समस्या।

और समिधा आत्मा फुंकती रही है

व्रजेश "चंचल"

निकट रहकर अब बहुत घबरा गया हूँ,
इसलिए, अब दूर जाना चाहता हूँ।

लो सँभालो, यश भरे ये पात्र अपने,
खनखना कुछ देर रीते हो गए हैं।
हर समेटी रात के मुँह जोर सपने,
आँख भरकर साथ मेरे सो गए हैं।

स्वत्व माँगा था कभी जो प्यार का तो,
अचीन्हा, यह घृणा का संसार पाकर,
बिम्ब होकर काँच से चकरा गया हूँ,
इसलिए, अब बिखर जाना चाहता हूँ।

दान लेकर क्या करूँ, हूँ स्वयं दानी,
गिड़गिड़ाना है नहीं विश्वास मेरा !
शब्द की जिस तूलिका से चित्र खींचे,
विविध वर्णी इन्द्रधनु सा जो चितेरा!

क्या नहीं हूँ मैं कि होकर तत्व ज्ञानी ?
मृत्यु से वरदान पाकर अमरता का,
आहटों तक से कि अब कतरा रहा हूँ,
इसलिए, अब चूर होना चाहता हूँ।

धूप थी, जब रूप का सूरज तरुण था,
अस्त क्षण के बाद भी थी तपन इतनी।
सुरा पीकर रात सोये शराबी की,
आँख में हो शायरी की चुभन जितनी।

दर्द का यह यज्ञ जब से चल रहा है,
और समिधा आत्मा फुंकती रही है—
आग होकर राख सा छितरा गया हूँ,
इसलिए बन, धूल उड़ना चाहता हूँ।

निकट रहकर अब बहुत घबरा गया हूँ,
इसलिए : अब दूर जाना चाहता हूँ।

सपनों के कफन

रामेश्वर दयाल श्रीमाली

आज भी सतयुग है
अटल है मनुष्य
युग-सत्य के निर्वाह में।
हर युग का शाश्वत सत्य
भूख है, रोटी है—
पेट की भट्टी में अनवरत, अकम्प
चिरन्तन
दहकते शोले!
हित चिन्तक ऋषि का बाना पहिने
छल का विश्वामित्र
आज भी सर्वस्व छीनने खड़ा है
मायावी मशीनें
आज भी सपने बुनने में व्यस्त हैं
आज भी
ऐश्वर्य-सुमन-सम्भव
छिपा सा
अभावों का काला नाग
प्रतिक्षण डसता है—
कला के रोहिताश्व को।
किसी धनपति सेठ की
तोंद के तले
आज भी गिरवी है
प्रतिभा सम्मान की तारामती
विवश सी!
आज भी
बिका हुआ है
इन्सानियत का हरिश्चन्द्र

देखता [illegible]
[illegible] के [illegible] ।
आज भी सम्मुख है
खड़ा है मनुष्य
युग-[illegible] के निर्वाह में

●

कूड़ादान है इतिहास

पड़ गये हैं काले
इन्सानियत के गुलाब
न आभा रही है
न सुगन्ध
सड़ते हैं, और बदबू देते हैं ।
कूड़ादान है इतिहास
निसरव दिवसों की सड़ी हुई बदबू से
बे-भाव परतों से
पाता जीवन-ध्वनि
दिखाता रस-बोध‥‥‥(?)‥‥‥!
मत खोजो सभ्यता के पदचिह्न-
बड़े भीषण हैं
सड़ चुकी संस्कृतियाँ
बाँटते दुर्गन्ध
समय के सरोवर में
मरी मछलियों सी ।

●

सन्त्रस्त का विद्रोह

बलवीरसिंह 'करुण'

तुम
मुझे सपनों का मायावी झुनझुना देकर
बहलाना चाहते हो।
तुम
मेरे अतीत और भविष्य के बीच से
मेरा वर्तमान हटाना चाहते हो।
तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं भूख ही खाता रहूँ
और प्यास ही पीता रहूँ,
अभावों के अंगारों से जली
इस जीवन की गुदड़ी को
बिना धागे वाली
जंग लगी
और टूटी नोक वाली
आशा की मोटी सूई से सीता रहूँ।
तुम यही चाहते हो ना—
की व्यवस्था के नाम पर
मैं घोर अव्यवस्थाजन्य अपमान को
चुपचाप सहता रहूँ;
तुम्हारी बदचलन इच्छाओं की
बदनाम कोख से जन्मी
अवैध सन्तानों यानी कुरूप रूढ़ियों को
अपनी कुबड़ी पीठ पर ढोता रहूँ
और "शिव-शिव" कहता रहूँ
और तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं गूँगा होने का स्वांग

देखता प्रतिपल
गज-गामनी के कदम ।
आज भी गतयुग है
पटल है मनुष्य
युग-भाव के निर्वाह में

●

कूड़ादान है इतिहास

पड़ गये हैं बासे
इन्सानियत के गुलाब
न आभा रही है
न सुगन्ध
सड़ते हैं, और बदबू देते हैं ।
कूड़ादान है इतिहास
निरर्थक दिनों की सड़ी हुई बदबू में
बे-भाव पत्थरों सा
पाता जीवन-ध्वनि
दिखाता रस-बोध……(?)……!
मत खोजो सभ्यता के पदचिह्न-
बड़े भीषण हैं
सड़ चुकी संस्कृतियाँ
बाँटते दुर्गन्ध
समय के सरोवर में
मरी मछलियों सी ।

सन्त्रस्त का विद्रोह

बलवीरसिंह 'करुण'

तुम
मुझे सपनों का मायावी झुनझुना देकर
बहलाना चाहते हो।
तुम
मेरे अतीत और भविष्य के बीच से
मेरा वर्तमान हटाना चाहते हो।
तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं भूख ही खाता रहूँ
और प्यास ही पीता रहूँ,
अभावों के अंगारों से जली
इस जीवन की गुदड़ी को
बिना धागे वाली
जंग लगी
और टूटी नोक वाली
आशा की मोटी सुई से सीता रहूँ।
तुम यही चाहते हो ना—
की व्यवस्था के नाम पर
मैं घोर अव्यवस्थाजन्य अपमान को
चुपचाप सहता रहूँ;
तुम्हारी बदचलन इच्छाओं की
बदनाम कोख से जन्मी
अवैध सन्तानों यानी कुरूप रूढ़ियों को
अपनी कुबड़ी पीठ पर ढोता रहूँ
और "शिव-शिव" कहता रहूँ
और तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं गूँगा होने का स्वाँग

हाथी जैसी मन्दगति, बेफिक्री का भाव था।
उसने भी शायद
स्वयं को हाथी ही समझा था,
क्योंकि कुत्ता, उसे देखकर ही तो भौंका था ?
सच है, गधा यदि स्वयं को हाथी समझता है
तो क्या गुनाह करता है ?
वह तो जमाने के साथ चलता है !

सही स्तर

सुषमा चतुर्वेदी

तुमने अपनी नजरें सदा,
धरती पर जमाये रखी हैं,
धरती—
जो देखने में ठोस लगती है,
पर उसके अन्तराल में क्या क्या छिपा है,
यह किसी को नहीं मालूम।
हाँ, कभी कोई ज्वालामुखी फूटता है,
और कभी कठोर दिखने वाली—
धरती का सीना चीर कर,
मीठे जल का (या यूँ कहूँ कि तृप्ति का)
कोई स्त्रोत फूट पड़ता है—
और कभी कभी इस धरती के मन में,
कोई भूचाल आता है—
भूचाल, जो सबको कँपा देता है—
और फिर सब शान्त-शान्त हो जाता है!!
धरती पर नजरें जमाये,
जब तुम्हारी आँखें थकी हैं—
तो अपनी बोझिल पलकें तुमने आकाश पर टिका दी हैं,
आकाश—
जो शून्य है,
धरती की तरह, आकाश का अन्तराल भी—
एक अनबूझ पहेली है।
आकाश की ऊँचाई,
कल्पनाओं का प्रतीक है,
धरती की गहराई
निराशा का गीत है—

धरती और आकाश के बीच का एक स्वर है,
वही अपने जीवन का, शुद्ध और मधुर स्वर है
काश ! तुमने देखा होता,
इस ठोस धरती के सीने पर,
खुशनुमा फूल भी खिलते हैं–
और इन फूलों को खिलने के लिये,
आकाश के सूरज की धूप की ज़रूरत है–
और फिर एक खास मौसम में,
फूल–जो धूप बिना जी ही नहीं सकता
उसी धूप की तपिश, फूल को झुलसा देती है—
यह सही है,
कि इस चमन में खिज़ाँ आती है,
पर हर खिज़ाँ के बाद—
बहार इस चमन को दुलराती है।
यह कोई पहेली नहीं,
तेरे मेरे समान स्तर के जीवन का चलन है ।।
एक बार नजरें, जमीन से उठा डालो,
एक बार पलकें, आकाश से झुका डालो,
और तब सचमुच तुम्हें लगेगा कि—
सुख और दुख मे कोई फासला नहीं है
प्यार, बेरुखी का, कोई मामला नहीं है ।।

वार्ता का प्रथम चरण,
चलने को था,
कि,
'होस्टेस शिक्षा' ने सुझाया,
क्यों न, डिनर के बाद,
'हरे कृष्णा–हरे राम' का दौर चले ?
सब सहमत थे।
पर, इतने में,
मिस 'बुद्धिबाला' आ पड़ी,
सिर पटका,
झुंझला कर बोली,
माँ शारदे ! इन्हें 'दिशा' तो सुझा !

●

वरदान

देवेन्द्रसिंह पुंडीर

अरे मन बावरे,
क्यों करता देव पूजा, किसलिए—
क्या इसलिए कि कहीं ईश्वर ही मिल जायेगा,
या इसलिए कि मिल जाये—
शायद मन चाही वस्तु या वरदान—
अथवा इसलिए कि दुनिया की शक्ति का
स्रोत तू ही पा जावेगा,
या इसलिए कि कहीं संचित धन ही मिल जावे,
जिससे कि मनो कामना पूर्ण हो सके।
अरे मन बावरे !
यह सब मिथ्या है, दम्भ है, पाखण्ड है—
झूठ है।
सच तो केवल मानव पूजा है—
दीन पूजा है, श्रम पूजा है, कर्म पूजा है
जिससे सब कुछ सिद्ध हो सकता है,
और जिससे पा सकेगा दुनिया का,
अमोघ शस्त्र वरदान, श्रमदान,
श्रमदान वरदान।

प्रसंग वश

हनुमान प्रसाद बोहरा

बोझिल सुबह से
धुंधली शाम तक
जन्म सिद्धान्तों, नये नियमों का
कागजों से फाइलों तक
भार मौन अस्तित्व पर
भ्रमित, भीत व्यक्तित्व पर
पंगु बनकर बोझ लादते हैं
अनाम गलियों के गीत गाते हैं
जिनसे बोर होकर
विद्यार्थी दैत्याकार चित्र बनाते हैं
प्रसंग वश खींचते हैं सृजन के स्वर
प्रसंग वश मुर्दे जगाते हैं,

शाम

उदासीन नीड़ों पर उतर आई शाम
जैसे दीर्घ पंक्ति के मध्य में विराम
बागों में कलियों का बिखरा उन्माद
यौवन पर चढ़ आया रेशमी प्रसाद
नाच रही सरिता में लहरें सुनृत्यका
चंचला स्वर लहरी से गूंजी उपत्यका।
कर रही शृंगार निशा, छूटा आराम
उदासीन नीड़ों पर उतर आई शाम।
वल्लरियां सिमटाये आंचल हरित
हलचल पर प्रतिबंध, लाज आवरित
मौन सभा सा गुमसुम उपवन सभीत
जैसे होकर बैठा, सावन से भीत।
हौले-हौले गुनगुनाये, भंवरा बदनाम
उदासीन नीड़ों पर उतर आई शाम।

चरैवेति - चरैवेति

सीना ताने चल
सीना ताने चल

रात अँधेरी हो तो हो
काली-पीली हो तो हो
आगे बढ़कर फूँक जलाती
नागिन बैठी हो तो हो

सीना ताने चल
कदम बढ़ाके चल

पर्वत नदियाँ झरने घाटि
आँधी तूफानी झंझानी
हाथ उठाके चुनौति दे दे
धायेंगे सब बनने साथी
काँटों की क्यारी में भी
फूल खिलाता चल

अंधेरी रात

ओम केवलिया

अंधेरी रात
जैट-ब्लैक-सी काली
श्वेत परिधानों में
चले जा रहे व्यक्ति
सफ़ेद कफ़नों में
लिपटे सिमटे
लाशों से पड़ते हैं दिखलाई।
सन्नाटा है
पत्तों के टकराने,
गिर जाने की आवाज़
आ जाती है कहीं-कहीं से।
लगता है जैसे 'कफ़्यू' आर्डर' है
या
'एयर रेड' की आशंका से
सहम गया है सब कुछ

दो कविताएँ

गोविन्द कल्ला

र्वाधिकार

भावों के स्क्रैप टुकड़ों को
शब्दों में बन्द कर,
लिख लाया कवि
एक गीत, धन्यवाद।
बोला—
कृपया, पारिश्रमिक देकर
छुपा लीजिये अपना माल—
मुझे तो बेचना ही था इसे,
सर्वाधिकार आप सुरक्षित कीजिये
हमें तो दक्षिणा से दीक्षित कीजिये,
पेट आटे से भरता है,
धन्यवाद से नहीं।

(2)

दवाद

माननीय ऋतुराज वसन्त,
मेरे प्यारे वृक्षों और पत्तियों,
हमें खेद है कि—
हम न तो जाने वाले को ही
भाव-भीनी विदाई दे सके
और न आने वाले का ही
सत्कार कर सके
क्योंकि
आज हम सब
हड़ताल पर हैं।

विरोधाभास

अफजल खाँ पठान 'अकबर'

क्या यह सच है कि—
एक देवता पर
दो या इससे अधिक
फूल चढ़ सकते हैं ?
पर एक फूल
किन्हीं दो देवताओं पर
नहीं चढ़ सकता।
फिर ये कैसा विरोधाभास कि
एक सुन्दर फूल
किसी एक देवता के सिर
जा चढ़ा।
और जब मुरझा कर
चरणों में पहुँचा
तो किसी दूसरे देवता के सिर
जा चढ़ा।
इसलिये कहता हूँ—
ए देवताओं सावधान
वह फूल यहीं आसपास है।
और किसी तीसरे
देवता के सिर की उसे तलाश है।

गणित की पढ़ाई

श्री मधुसूदन बंसल

गणित की पढ़ाई
भी क्या आनन्द है
कम लिखना, पर नम्बर पूरे लेना
बहुत हुआ तो दस में से सात आठ नहीं।
याद करने को
छोटे-छोटे गुटरले
लम्बे-लम्बे ऊबा देने वाले, व्याख्यान नहीं।
कभी जांचना भी हुआ तो भी सुविधा
तरीका थोड़ा देखा, उत्तर पर दृष्टि फेंकी,
और बस
तुले तुलाये नम्बर दे दिये।
व्यवहार में है,
दृढ़ अटल नियम वाली,
निश्चित नियम और निश्चित सूत्र,
फिर भी अपनी सामाजिकता नहीं छोड़ती।
"एक अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के अनेक मार्ग
(या विधियाँ) हो सकती हैं"
से सहमत है
भ्रष्टाचार और बेईमानी से दूर न रहें,
तो समस्या का हल कोसों दूर चला जाता है
और इसके विपरीत
ईमानदारी और सूझ से काम लें
तो हल तुरन्त निकल आता है।
पर एक बात में शायद
दूसरे हमारा अहित समझें

विरोधाभास

अफजल खाँ पठान 'अग'

क्या यह सच है कि—
एक देवता पर
दो या इससे अधिक
फूल चढ़ सकते हैं ?
पर एक फूल
किन्ही दो देवताओं पर
नहीं चढ़ सकता।
फिर ये कैसा विरोधाभास कि
एक सुन्दर फूल
किसी एक देवता के सिर
जा चढ़ा।
और जब मुरझा कर
चरणों में पहुँचा
तो किसी दूसरे देवता के सिर
जा चढ़ा।
इसलिये कहता हूँ—
ए देवताओं सावधान
वह फूल यहीं
और किसी त
देवता के सिर

और सारे आकाश का
शामियाना
भरी हुई महफिल में
मेरे ही कंधों पर
और अधिक लटक गया
शूली पर अटक गई सांस
अपने ही सोने की
अनबोली अर्थ भरी
धड़कन के कहे कहे
भीड़ भरी बस्ती की
छिली हुई आवाजें पी गये
जुड़ने के यत्नों पर
चिंतन को टांगने
और अधिक टूट गया मैं
क्वांरी अनुभूति के
मक्खी के परों से
बहुत छोटा हो गया
अभिव्यक्ति का आकाश
पंजे पर खड़े हुए
प्रश्नों की कौड़ी सी आंखों से
बिंधा हुआ
अंधी आवाजों में
अपने को ढूंढ़ता
पत्थर का बुत
तब लगा कि
प्रश्न मेरा
आलपिन के नुकीले सिरे से
गत युगों से
बहुत तीखा है
बहुत तीखा

●

मुक्तक

नारायणकृष्ण पालीवाल 'अकेला'

(१)

हाला पीकर बहक जाता हूँ मैं
प्याला लेकर छलक जाता हूँ मैं
रूपबाला से तो दूर ही रहता हूँ
नाम सुन कर ही महक जाता हूँ मैं

(२)

हवा की एक मृदु लहर हो तुम
चांदनी रात का प्रथम प्रहर हो तुम
कौन सा उपमान खोजूँ तुम्हारे लिए
उपमान के लिये भी उपमान हो तुम

(३)

तुम शरमाई सितारे टिमटिमाये
तुम अँगड़ाईं कलेजे भर आए
कई दिनो बाद तुम्हे हँसता देख
आँखों के आँसू रुके नहीं बह आए

(४)

जीवन तो सुन्दरता की ही एक कहानी है
मिलन विरह के आलिंगन की एक जवानी है
जो हँस ले जी भरकर जग में धन्य वही
माटी की यह देह कभी माटी बन जानी है

(५)

दिन में सितारे दिखाई नही देते हैं
रात में सूरज भी कही दुबक कर चला जाता है
इसलिये कि कहीं जवानी भटक न जाय
बुढ़ापा मेहमान बनकर आ जाता है

(६)

लहर को किनारे की तलाश होती है
समन्दर को सरिता की प्यास होती है
यहां हर चीज अधूरी है इसीलिये
कवि को रसिक की तलाश होती है

(७)

किसी के ख्यालों में खोने से फायदा क्या
किसी की मुहब्बत में रोने से फायदा क्या
यहां कोई किसी का नहीं है दोस्त
आंखों से लहू टपकाने से फायदा क्या

(८)

आंखों में इक सागर उमड़ कर बरस जाया करता है
ख्यालों में इक इन्द्र धनुष तरस जाया करता है
मौसम ही रंगीला हो तो दोष किसे दूं सनम
आसमां धरती से आंख मिलाया करता है

(९)

तू दूर रह कर भी बहुत नजदीक है मेरे
जैसे कोई किरन अंधेरे पर तेरे
क्या जरूरत है कि किसी और को देखूं
तू मुझमें है और मैं सांसों में हूं तेरे

ग्यारह मुक्तक

योगेन्द्रसिंह भाटी

(१)

इनसान अगर वे आफत का मारा हो जाए
जिंदगी मंझधार में यों बेकिनारा हो जाए
तो चाहिए उसे खुदी को बुलन्द करे इतना-
कि वो खुद ही असल में खुद का सहारा हो जाए ?

(२)

जो नित नये अरमाँ उगलता रहे, सीना कहते हैं
जो पिस कर भी रंग लाये, उसे हीना कहते हैं
ऐसी उमंग औ हसरत भरी जिन्दगी "योगी"
जीना उसी को हकीकत मे जीना कहते हैं।

(३)

जियो तो यों जियो कि जिसे जीना कहते हैं
जिंदगी का जाम यों पियो कि जिसे पीना कहते हैं
गर मर मर कर जियो तो क्या जिया "योगी"
जिन्दा दिली से जियो तो जीना कहते हैं।

(४)

जिन्हें हार में जीत का अहसास नहीं होता
मावस में जिन्हें पूनों का भास नहीं होता
जो जीवन ही को अभिशाप समझ कोसा करते
उनका खुद अपने ही पर विश्वास नहीं होता।

(५)

दुख-दर्द ही हमें दुख-दर्द से लड़ना सिखाते हैं
सम्हल कर ज़िंदगी की राह खुद गढ़ना सिखाते हैं
सिखाते हैं वो हमको हकीकत में जिंदगी क्या है ?
कि अनुभव-पाठशाला में हमें पढ़ना सिखाते हैं।

(६)

जो जिन्दगी की राह पर बढ़ता रहा है
जो मंजिलें अपनी स्वयं गढ़ता रहा है
है वो ही असल में जिन्दगी का राजदां
तसवीर अपनी आप जो मढ़ता रहा है।

(७)

सुख की शैया पर जिन्दगी बहक जाती है
दुख की दहलीज पर जिंदगी चहक जाती है—
दुख वो खुशनुमा ख्वाब है जिनके दामन में
जिन्दगी फूलों सी महक महक आती है।

(८)

चेहरे पर तुम्हारे सुनाई नहीं है
लगता है जिन्दगी रास आई नहीं है
रूठी है अगर जिन्दगी तो मना लो तुम–
जिन्दगी अपनी कोई पराई नहीं है।

(९)

हिम्मत हर गाफिल को गतिमान बना देती है
हिम्मत हर निर्बल को बलवान बना देती है
हिम्मत गर चाहे तो पत्थर को पानी कर दे–
हिम्मत हर मुश्किल को आसान बना देती है।

(१०)

खोजते रहने पर मिलते जरूर मोती
चलते रहने पर मंजिल भार नहीं होती
महनत वालों को मिलती आखिर मंजिल
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

(११)

जिन्दगी मौत के इस पार है उस पार है
मौत को भी जिन्दगी दरकार है
जिन्दगी के दो सिरों के बीच में–
मौत बेचारी खड़ी मंझधार है।

मेरा ग़म हैं

रफीक अहमद उसमानी

उनकी रुस्वाइयाँ मेरा गम हैं
शब की तन्हाइयाँ मेरा गम हैं
मुझको शिकवा नहीं जमाने से
मेरी नादानियाँ मेरा गम हैं
चुप हूँ कुछ सोच कर के महफिल में
चन्द मजबूरियाँ मेरा गम है
हँसते गुलशन पे क्या गिरी बिजली
इसकी वीरानियाँ मेरा गम हैं
वक्त का हर सितम गवारा है
दिल की गहराइयाँ मेरा गम हैं
साजे-दिल कैसे छेड़ दूँ यारो
इसकी बेताबियाँ मेरा गम हैं
सच जो पूछो 'रफीक' से यारो
इसकी खामोशियाँ मेरा गम हैं

खास निगाहें मेरे पैमाने पर

हौसले बढ़ते हैं दुश्वारियाँ आ जाने पर
कश्तियाँ बहती है तूफाँ के सितम ढाने पर
कर के इक और सितम आग लगा दी तुमने
डाल कर खास निगाहें मेरे पैमाने पर
कैसे मिट जायेंगे इन्सान की फितरत के नकूश
हँसता इन्सान है इन्सान के मिट जाने पर
है अभी कुछ ना हुआ आओ मुसाफा कर लें
वरना पछताओगे फिर बात के बढ़ जाने पर
यूँ सितम ढाने की हिम्मत ही नहीं है तुम में
जानते हम हैं बड़े आप के बहकाने पर
आलमे हिज्र ने कुछ ऐसा सताया कि 'रफीक'
हो गया भूल से सजदा किसी मयखाने पर

मेरी खता

आपसे पर्दा करूँ मेरी खता
दीद को तरसा करूँ मेरी खता
सह रहा हूँ हर सितम इस दौर के
आपसे शिकवा करूँ मेरी खता
बेरुखी से डाल ली उसने नक़ाब
प्यार से देखा करूँ मेरी खता
आ गया तूफाँ किनारों के करीब
कश्तियाँ देखा करूँ मेरी खता
प्यार ने बख्शी मुझे तनहाइयाँ
बज्म का चर्चा करूँ मेरी खता
इन निगाहों का बता तूही 'रफीक'
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ मेरी खता

नौ मुक्तक

(1)

जिन्दगी की तवील राहों में
चन्द लम्हात ऐसे आये हैं
मन्जिलों के निशान पाने को
हमने खूँ के दीये जलाये हैं

(2)

कैसा दुनिया का है अजब दस्तूर
पास रहता है याद आता है
जब भी आँखों से कोई दूर रहे
उसको इन्सान भूल जाता है

(3)

घुट-घुट के यूँ जीने के अन्दाज बदल दो
जो साज बे आवाज़ हो वो साज बदल दो
बिगड़े हुए माहौले जमाने के मुखालिफ
आवाज उठा करके तुम आवाज बदल दो

(4)

गम के साये हटाने को खातिर
फूँक डाली भी जिन्दगानी है
फिर भी खुशियाँ मिली हैं औरों को
इस हकीकत की यह कहानी है

(5)

वो पिछली जिन्दगी को भूल जाओ
नया इक मोड़ लाओ जिन्दगी में
कोई भी काम ना मुमकिन ना समझो
गमों को तुम बदल डालो खुशी में

(6)

बदल सकती है तारों की रवानी–
नये ऊनवाँ ने बदली है कहानी
हजारों बागवाँ बदले हैं फिर भी
चमन की है वही रंगत पुरानी

(7)

चिरागे जिन्दगी जलने लगे हैं
पुराने जख्म फिर सिलने लगे हैं
निकलना बागवाँ का रंग लाया
चमन में फूल फिर खिलने लगे हैं

(8)

गम गुसारों से दूर बैठे हैं
चाँद तारों से दूर बैठे हैं
खुद ही तूफाँ में आके कहते हैं
अब किनारों से दूर बैठे हैं

(9)

गुल की रंगत छुपी नहीं रहती
आगे उल्फत छुपी नहीं रहती
आइना देख कर के क्या कीजे
अच्छी सूरत छुपी नहीं रहती

(4) जब है मचली खिजाँ के दामन में क्या, क्यों किस्साये बहार करूँ
आशियाँ फूँक डालूँ आहों से, बिजलियों का क्यों इन्तेजार करूँ

(5) जितनी नजदिकियाँ हों दो दिल में, उनका फिर कम शिकार होता है
दूर जितने भी हों वो ए तोफीक, उनमें उतना ही प्यार होता है।

(6) लब पे खामोशियों का पहरा है, उनका मायूस बुत-सा चेहरा है
मेरी नजरें ना कुछ समझ पाई, "उनकी खामोशी" राज़ गहरा है।

(7) मेरी नाकामियाँ ही मेरे नदीम, जिन्दगी का सहारा बन बैठीं
उलझी कश्ती के वास्ते जैसे, मोजें खुद ही किनारा बन बैठीं

o

तीन बिन्दु : तीन सिन्धु

भंवरसिंह सहवाल

(१)

कैसे सुनाऊँ दोस्त ! जिन्दगी की दास्ताँ,
जैसा जिगर मिला वैसी जुबाँ नहीं,

(२)

जीवन सफर में कुछ ऐसा हुआ साथी !
गुजरा नहीं राही, राहें गुजर गईं ।

(३)

जलता तो है चिराग इस दिल का हर घड़ी,
यह कैसी बात है कि रोशनी नहीं ।

(४)

बदला नहीं पाँखी, पाँखें बदल गईं,
बदला नहीं तरुवर, साखें बदल गईं,
मत पूछ मेरे दोस्त ! जिन्दगी की दास्ताँ,
बदला नहीं सपना, आँखें बदल गईं ।

(५)

आज सवेरे के ख्वाबों को क्या हुआ,
उपवन में खिलते गुलाबों को क्या हुआ,
नशा कुछ आया ही नहीं ऐ मेरे साथी !
आँखों में ढलती शराबों को क्या हुआ ?

(६)

घिरते हुए अंधेरे कितने सघन हुए,
इन बस्तियों के घेरे कितने विजन हुए,
यह दिल तो मेरे दोस्त ! श्मशान है जिसमें
उठते हुए अरमान कितने दफन हुए ।

o

चार मुक्तक

सुषमा चतुर्वेदी

(1)

आज तेरी याद मेरे दिल पर यूँ छाई है
गोया आसमाँ पे काली, बदली घिर आई है
जिन्दगी पाँव बिना दौड़ पड़ी मंजिल को,
मौत ने दूर कहीं, बाँसुरी बजाई है ।।

(2)

उनकी आदत थी, जिसे मनुहार समझी,
मन का धोखा था, जिसे मैं प्यार समझी,
चाह कर ही क्या कभी कुछ मिल सका है ?
प्यार है वरदान, मैं अधिकार समझी ।।

(3)

तेरे हर गम का दर्द, अपने दिल में पाया है,
तेरे अश्कों को मेरे, होंठ ने सुखाया है-
अब इससे बढ़कर तेरा, और करम क्या होगा,
तुझे गिला है मैंने, तेरा दिल दुखाया है ।।

(4)

आज की रात गले मिलके जरा रोने दे,
याद के दाग जो बाकी हैं, जरा धोने दे,
ऐ मेरे होश ! मुझे अब तलक जगाया है,
हो के मदहोश मुझे, आज जरा सोने दे ।।

चार रुबाइयाँ

रविशंकर भट्ट

(१)

गुनाहों को पनाह मत दो, उसके आदमी को सहलाओ
प्यार की हमनज़र से देखो उसे प्यार में बहलाओ
इज्जत से डरो इज्जत आदमी की नूर होती है
ला सको रास्ते पर उस गुनाहगार को लाओ

(२)

कुछ चोरों ने चौकीदारी का ज़िम्मा लिया
कुछ सूदखोरों ने इन्सानियत का बीमा किया
इस ज़माने की लहर बह रही है ऐसी
कि बद ने नेकी को मुल्क निकाला दिया

(३)

किसी की अनबन की हँसी न उड़ाओ
किसी के किये गुनाहों को मत कुरेदो
इस उमर पर आदमी लड़खड़ाता है
दे सको दोस्त! उसे सहारा दे दो

(४)

हर बुत कभी भगवान नहीं होगा
गैर धरम को माने बेईमान नहीं होगा
आदमी के बनने का अंदाज और है
केवल हाथ पैरों से कोई इन्सान नहीं होता

क्षणिकाएँ

सह अस्तित्व

मनमोहन झा

वह भी
मेरे ही जैसा
जहरीला साँप था
मैंने उसको ... और
उसने मुझको
डस लिया
हम दोनों में से कोई भी
नहीं मरा :
आखिर हमने
एक शान्ति समझौते पर
हस्ताक्षर कर दिये ।

ऑपोरच्युनिस्ट

बाढ़ में डूबते हुए
एक होशियार आदमी ने
एक तैरती हुई लाश देखी ... तो
लकड़ी का लट्ठा छोड़ कर
लाश का सहारा ले लिया ... और
पार लग गया :
तट पर खड़ी हुई
हतप्रभ भीड़ को लाश दिखा कर
हाँफता हुआ बोला—
'मेरी चिन्ता मत करो
इसका इलाज करो
अपनी जान संकट में डालकर
बड़ी 'रिस्क' लेकर
इसे बचा कर यहाँ तक
लाया हूँ ।'

उलाहना

भंवरसिंह

इंकलाब !
क्यों अग्नियज्ञी बना दुकाल का ?
एक एक कर लील गया —
सभी देशभक्त, माँ के सपूत ।
क्या यही अभीप्सा थी
कि तेरे बाद
रहें जिन्द-आबाद ?

व्यंग्य

नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'

वादा

भाइयो और बहिनो,
मेरा वादा सुनो !
जो कहता हूँ, वह निभाता हूँ
इस बार, इतना ही—
विश्वास दिलाता हूँ !
या तो तुम्हारी गरीबी हटाऊँगा
नही तो मै भी गरीब बन जाऊँगा !'
सच निकली वह बात—
आये वो मांगने
ठीक पाँच साल बाद !
क्योंकि चुनाव की
पूरी हो गई मियाद !!

भाषण

नेताजी मंच पर आये
श्रोता न देख
खूब तिलमिलाये,
पर निगाह–
ज्योंही फोटोग्राफर पर पड़ी,
खिल गई उनके मन की कली !
तुरंत माइक पर आ गये—
भाषण पर भाषण झाड़ गये !!

मंच पर बैठे आयोजक दुखी थे,
पर नेताजी सचमुच, सुखी थे,
क्योंकि
फोटोग्राफर की पूरी रील—
काम आगई थी।

नई पीढ़ी

नई पीढ़ी
है एक इस्पाती सीढ़ी,
जिसका नाम लेकर
मुंह देखी तारीफ कर,
जी चाहे जहां रखकर,
सब ऊपर चढ़ जाते हैं—
पर वह !
जहां की तहां पड़ जाती है।

कैपिटलिस्ट

हनुमानप्रसाद बोहरा

अरे ओ रे भ्रमर !
कानून से तो डर
हरेक कली का रस पीता है अशिष्ट !
समाजवादी बाग में बनता है कैपिटलिस्ट !

●

जिन्दगी

जीवन भर लिखता रहा
न बात हुई पूरी
हाय रे जिन्दगी
अधूरी की अधूरी ।

○

जीत

संभव है जीत
असंभव भी जीत
सफल नहीं होने पर
अनुभव है जीत ।

●

आदमी का डर

सांवर दइया

चुटकी भर बारूद से
सृष्टि को राख करने का नुस्खा
जो आदमी ईजाद करता है।
वह विनाशक बारूद से नहीं
प्रयोगशाला मे अपने पास बैठे
अपने ही जैसे आदमी से डरता है!

प्रश्न

पुरुषोत्तम 'पल्लव'

रोज़
हज़ारों मरते हैं,
शायद
जिन्दा
रहने से डरते हैं।

●

पुण्य

बहुत से
तीर्थ जाते हैं
पुण्य कमाते हैं
वो निरे बुद्धू हैं ?
जो चाँद पर जाकर
पत्थर ही लाते हैं !

●

सञ्चालक

रामेश्वरदयाल श्रीमाली

मिथ्या है चिन्तन
झूठा है तत्व-बोध
खोखला है दर्शन
निश्शब्द शब्दकोष
मृत है इन्सानियत
अमृत है मौत
सृष्टि का संचालक ईश्वर नहीं—
स्वार्थ है।

नमस्कृत्य

आज इन्सानियत की
मातम पुर्सी है।
नमस्कृत्य कहीं भी
इन्सान नहीं—
कुर्सी है।

गीत तथा गज़ल

गीत

गौरीशंकर आर्य

परिवाद करूँ मैं, तो कहना,
प्रतिकार करूँ मैं, तो कहना।

झिझको मत, मैंने कब किसके आगे जा अपना दुख गाया
लाओ दे दो फिर, शंकर हूँ – विष तो मैं पीता ही आया
परिचित हूँ इन मनुहारों से
इन्कार करूँ मैं तो कहना।

पद-घात मिला प्रतिदान मुझे जब मेरे चिर आराधन का,
'धीरज की कठिन परिक्षा' कह कर हलका बोझ किया मन का।
चाहो करदो पुनरावर्तन
निश्वास भरूँ मैं तो कहना।

पथ का सिंचन करता आया अपने इन नयनों के जल से
मंडराये तुम वरदान लिए गरजे, बिन बरसे बादल से
आँसू से पीकर प्यास, नहीं—
फिर धैर्य धरूँ मैं तो कहना।

जैसे भी हो जीवन का पथ कटना है कट ही जावेगा
इस बार नहीं उस बार सही, राही मंजिल तो पावेगा
प्रति पग की ठोकर पर प्रियतम,

आत्म-बोध

बी.एल.

जीवन के खडित और अखंडित कोणो मे
सारा जग देख लिया फिर भी अनदेखा हूँ

कलियो से बागों तक मौसम को बहलाया
सूरज से संध्या तक मौसम को बहलाया
सीपी के अन्तस से गहराये सागर तक
सारा जल सोख लिया फिर भी मैं प्यासा हूँ

शब्दो ने कर डाला अर्थों को छिन्न-भिन्न
हार गये उत्तर सब जीता हर प्रश्न-चिन्ह
रेशम की हँसियो से चिथडो के आंसू तक
सारा रस भोग लिया फिर भी अनभोगा हूँ

बार बार दस्तक दी बहरे दरवाजो पर
बार बार फिसला मन चिकनी आवाजो पर
रग भरे पलनो से सपनों के मरघट तक
सबको पहचान लिया फिर भी अनचीन्हा हूँ

संभव नहीं

तुम न थामो अब किरण की चाल को तम की ड
फिसल जाये भोर यह संभव नही, संभव नहीं

रात ढलती जा रही है रोशनी के द्वार खोलो
आ गया है वक्त सबके आंसुओ का भार तोलो
टूटने दो पीढ़ियो के मौन को स्वच्छन्द लेकर
पिछड़ जाये शोर यह संभव नहीं, संभव नहीं

सभ्यता के शोर-गुल में आस्थायें खो रहीं हैं
सींखचों में कैद होकर साधनायें रो रही हैं
तुम न नापो आदमी को मन्दिरों से, मस्जिदों से
बहक जाये देव यह संभव नहीं, संभव नहीं

बिजलियों के जाल में हर दीप की लौ घुट रही है
बन्द कमरों में हमारी संस्कृतियाँ लुट रहीं हैं
तुम न देखो हर शक्ल को इन धुमैले आइनों में
सिमट जाये रूप यह सभव नहीं, सभव नहीं

पूँजियों की बीन पर फुँकार भरते साँप हैं
आज सबकी रोटियों पर डालरों की छाप है
तुम न भरमाओ हमारी दृष्टियों को लालचों से
ठिठक जाये खून यह संभव नहीं, सभव नहीं

प्यार बाँटते चलो

तुम अगर उदासियों को प्यार बाँटते चलो
रास्ते की धूल को सिंगार बाँटते चलो
बर्फ की जबान को अँगार बाँटते चलो
जिन्दगी की हर घड़ी सुहाग रात है

अभी उदास दीप की है लौ कटी-फटी
गहर रही है रात और पौ नहीं फटी
जमीं से आसमाँ तलक उजास मौन है
अन्धेरी कालिमा की है उमर नहीं घटी

तुम अगर दिशा-दिशा को भोर बाँटते चलो
घौंसलों को पंछियों का शोर बाँटते चलो
खंडहरों को रोशनी का दौर बाँटते चलो
जिन्दगी की हर घड़ी नया प्रभात है

बुझी-बुझी है दृष्टि, साँस है ढली-ढली
बिकी हुई है देह, आत्मा छली-छली
घुमावदार रास्ते, थके-थके कदम
कुँवारी शाम और बाँझ है गली-गली

तुम अगर जवानियों को आग बांटते चलो
कली–कली की सांस को पराग बांटते चलो
और माल-माल को सुहाग बांटते चलो
जिन्दगी की हर डगर नई बारात है

अभी सड़क की धार फाल रक्त में सनी
क्रुद्ध भाल और मुट्ठियां तनी–तनी
जवाब मौन, उग रहे सवाल पर सवाल
गुंथी हुई है जाल चक्रव्यूह सी घनी

तुम अगर सवाल को जवाब बांटते चलो
नग्न आस्थाओं को शबाब बांटते चलो
और शूल–शूल को गुलाब बांटते चलो
कारवां बहार का तुम्हारे साथ है

लक्ष्य

श्रीमती आशादेवी

मैं ढूंढ़ ढूंढ कर हार गई, पर लक्ष्य न मुझको मिल पाया।
आशा के उजले दीप लिए, बस सम्मुख प्रियतम को पाया।

पावन गंगा की द्रुत गति में,
विश्वास रजत की छाया लख।
अश्रु रहित पलकों में मैंने,
करुण व्यथा की बूंद रख।

उन गीतों को सहलाया है, पर सौरव न मुझको मिल पाया।
मैं ढूंढ़ ढूंढ कर.........

स्मृतियाँ चिर परिचित बनकर,
मन को नित झकझोरती।
काँटों के बीच चली अब तक,
मैं प्रणय पटल को तोलती।

दुनिया की देहरी देख चुकी, पर द्वार न मुझको मिल पाया।
मैं ढूंढ़ ढूंढ़ कर.... ... ..

मेरे प्राणों का मौन मोद,
बस सपनों में ही मुसकाया।
स्वच्छंद रहा अमृत पीन को,
मेरा मन सचमुच ललचाया।

अंजुलि भर भर पीने पर भी, यह उदर नहीं भर पाया।
मैं ढूंढ़ ढूंढ़ कर.........

जीवन से हार मान करके,
मधु गीतों की रचना की है।
दुख सुख के मुक्ता मणियों की,
यह माला मैंने पहनी है।

इसे समन्वय कहती हूँ, पर क्या सचमुच वह हो पाया।
मैं ढूंढ़ ढूंढ़ कर हार गई, पर लक्ष्य न मुझको मिल पाया।
आशा के उजले दीप लिये बस सम्मुख प्रियतम को पाया।

अपने मन की तुम

जगमोहन श्रोत्रिय

अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(१)

जब से तुमने आँखें फेरी
पल भर मेरी आँख न सोई।
जब से तुमने ममता तोड़ी,
साँस-साँस है मेरी रोई।

अपने तन-मन की तुम जानो,
मेरे कण-कण पीर तुम्हारी।
अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(२)

जब मन के सूने आँगन में,
दीप जला कर रजनी बरसी।
मेरे गीत भरे प्राणों में
प्राण ! तुम्हारी याद सिहरती।

जनम-जनम तक घेरे मुझको,
यह सुधि की प्राचीर तुम्हारी।
अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(३)

तुम तो मन की जानो सदा,
है तुमसे [illegible] का [illegible]।
किसी सुरभि की कविता हो तुम,
है [illegible] कोई नहीं [illegible]।

मेरी बिगड़ी रेख परख दे,
पारस-सी तकदीर तुम्हारी।
अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(४)

कहीं प्यार की पंखुरियों में,
बंदी हैं मधुकर के प्राण।
कहीं विहग के करुण कंठ में,
बंदी हैं चिर मधुमय गान।

मैं बंदी चिर प्राण तुम्हारा!
शाश्वत है जंजीर तुम्हारी।
अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

मेरे सपनों की नगरी

मदन याज्ञिक

मेरे सपनों की नगरी को वीरान बना
तुम और किसी के सपनों का शृंगार बनो
मैं तो सपनों के खंडहर ही में जी लूंगा।

मैं भूल गया था सूरज चांद-सितारों को
मैं भूल गया था भीड़ों औ' चौराहों को
बेसुधी तुम्हीं उपहार रूप में ले जाओ
मैं तो पीड़ा के दर्शन में ही जी लूंगा।

मैं मधु अधरारे आश्वासन से छला गया
मैं दृग कजरारे अनुमोदन से छला गया
तुम और किसी को आश्वासन अनुमोदन दो
मैं तो टूटे अनुबंधों में ही जी लूंगा।

तेरी अंगड़ाई में उषाएँ भूल गया
तेरी परछाईं में संध्याएँ भूल गया
उषाएँ तेरे सपनों को रंगीन करें
मैं तो बिखरी संध्याओं में ही जी लूंगा।

हर नई भोर तेरे सपनों में नित चमके
हर नई धूप दामन में नित दमके
हर रात पूर्णिमा, घर दीप जला जावे
मैं तो रातों के घुप अंधन में ही जी लूंगा।

मेरी आशाएँ तेरा पथराज बनें
सुख कामनाएँ तेरा जीवन-साज बनें
तुम नव बसंत का मनहर आरंभ करो
मैं तो पतझर के क्रन्दन में ही जी लूंगा।

ाहर से हम सजे सजे हैं

कुन्दनसिंह सजल

बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से।
महल बनाने की आशा में, गुजर रहे हैं खण्डहर से ॥

सच के दर्शन करने को, हम झूठ ओढ़ कर चलते हैं,
एक झूठ को सच करने, हम सौ-सौ भेष बदलते हैं,
विष का जहाँ प्रदर्शन होता, लेबल चिपका अमृत का–
उसी सभ्यता की नगरी में, हम जीते हैं, पलते हैं।
हम संस्कृति को सींच रहे हैं, संस्कार ले विषधर से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से। १॥

हम प्रकाश में बैठे बैठे, तम का ताना बुनते हैं,
ज्ञान-कथा में, प्रेम-कथा का, स्वर सचेत हो, सुनते हैं,
फूलों के पर्दे में होते हैं, कांटे नीलाम जहाँ—
हम सुन्दरता के अभिलाषी, ऐसे उपवन चुनते हैं।
मधुमासों का स्वागत करते हम सज-धज कर पतझड़ से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से ॥२॥

मुहर लगाकर धर्मों की, हम बेच रहे हैं पापों को,
प्रायश्चित का ढोंग रचाकर, हम ढोते अभिशापों को,
आत्म-हनन करके अपना, हम आत्म-शोध करने वाले–
अपनी सुविधा के हित हम, गढ़ते सामाजिक मापों को।
ऊपर से नियमों के हामी, घोर विरोधी अन्तर से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से ॥३॥

ाजल

अफज़ल खाँ पठान

किसी बेवफा की वफाई मे आकर ।
मिला दर्द दिल सब कुछ लुटा कर ।।

आशियाना जलता मेरा देख कर वो ।
सिमट कर वो निकले दामन बचाकर ।।

हालत पे मेरी तरस कुछ न आया ।
गये मुँह को फेरे वो आँखें चुराकर ।।

मुकदर ही अपना कुछ ऐसा लिखा था ।
डूबेगी किश्ती किनारा दिखा कर ।।

अब कयामत के दिन ही पूछेगा 'अफजल' ।
मिला उनको क्या मेरी दुनियाँ मिटाकर ।।

गजल

तेरी खुशी के खातिर जो कुछ मिले सहूँगा ।
जा तू चमन में विराने में मैं रहूँगा ।।

हिस्से के फूल मेरे आ जाये राहें मे तेरे ।
मेरा तो क्या मैं तो काँटों पे चल ही लूँगा ।।

मेरी उमर भी तुझको लग जाये ऐ सितमगर ।
ये दुआ रहेगी लब पर जब तक मैं जिऊँगा ।।

हो सफर तुम्हारा ऐसा खुशियाँ भरी हो जिसमे ।
तेरे गम मिले मुझे ही हँस कर उन्हें सहूँगा ।।

हो आप बस उन्ही के 'अफजल' से वास्ता क्या ।
ये यकीं रहे इस दिल को खुशी से मैं जिऊँगा ।।

गीत लिखूँ क्या ?

शंकर 'क्रन्दन'

यह माना तुम ही जीते पर तुम्हें तुम्हारी जीत लिखूँ क्या ?

और पराजय अपनी लिखकर,
क्या यौवन को हार सिखा दूँ,
पीछे आने वाले जग को
भूलों का संसार दिखा दूँ !

हास-रुदन के परे लिखूँ तो जीवन के विपरीत लिखूँ क्या ?
गीत लिखूँ क्या ?

मैं तो चित्रित करना चाहूँ,
जग-जीवन की विस्तृत-सूची,
पर बरबस मेरा अपना ही
चित्र बना देती है कूची !

इस अधूरे जीवन-पट पर तेरा नाम पुनीत लिखूँ क्या ?
गीत लिखूँ क्या !

किसी मिलन के मौन-दोल पर,
किसी विरह की व्यथा भुलाकर,
अपने ही चिर-स्नेह-दीप में !

आज तुम्हारे विस्मृति-तट से तुमको मेरे गीत लिखूँ क्या ?
गीत लिखूँ क्या ?

अफजल खाँ पठान, रा उ. मा वि. काकरोली; अतीक अहमद उसमानी, रा. उ. मा. वि. मोलासर, नागौर, अर्जुन अरविंद, काली पल्टन रोड, टोंक; अरनी रावट्‌स, रा. उ. मा. वि घाटोल, बासवाडा; ओम केवलिया, अनुदेशक, एस टी. सी. बीकानेर, ओमप्रकाश भाटी, रा. उ मा. वि., मकराना, नागौर, कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, काकरोली, उदयपुर; कुन्दनसिंह सजल, रा मा वि., गुरारा, खण्डेला, सीकर, गोपालकृष्ण लाटा, रा. उ. मा. वि, सुजानगढ; गोपीलाल दवे, हनवंत उ. मा. वि, पाल रोड, जोधपुर; गोविन्द कल्ला, जयनारायण व्यास कन्या विद्यालय के सामने, जालप मोहल्ला, जोधपुर, गोरीशंकर आर्य; जगदीश उज्ज्वल; जगदीश सुदामा, श्रीकृष्ण निकुंज, भाटियानी चोहटा, उदयपुर, जगमोहन श्रोत्रिय, एम एम. बी. मा. वि., अजमेर; डी. एम. लड्डा, ५६/२६, प्रेम नगर, नई बस्ती, रामगज, अजमेर, देवेन्द्रसिंह पुंडीर, रा उ मा. वि., बहरोड, अलवर; धनराज, रा. उ. मा वि, महिलाबाग, जोधपुर, नन्दकिशोर शर्मा, 'स्नेही', रा. उ मा. वि., गुमानपुरा, कोटा, नन्दन चतुर्वेदी, रा. उ. मा. वि. गुमानपुरा, कोटा; नारायणकृष्ण पालीवाल, रा उ. मा वि., मोही, उदयपुर; पुरुषोत्तम 'पल्लव', रा प्रा. वि, बडारडा, राजसमंद, उदयपुर; प्रेमचन्द कुलीन, रा. उ. प्रा. वि., १७/२५२, ब्रजराजपुरा, कोटा–६, बजरंगलाल विकल, उ मा वि, लाखेरी, बूंदी; बलवीरसिंह करुण, रा.उ मा वि., हरसोली, अलवर; बी. एल. अरविन्द, उ. मा. वि. भवानीमण्डी, कोटा; ब्रजेश चंचल, शारदा सदन, ब्रजराजपुरा, कोटा; भंवरसिंह, प्रधानाध्यापक, रा.उ प्रा. वि., नाद, अजमेर; भंवरसिंह सहवाल, अनुदेशक, एस.टी सी., मसूदा, अजमेर; भगवतीलाल जोशी, रा.उ मा. वि., आमीन्द, भीलवाड़ा; भगवतीलाल व्यास, उ.मा वि., विद्याभवन, उदयपुर; भगवन्तराव गाजरे, उ.मा.वि., निम्बाहेड़ा, चित्तौड़; मणि बावरा; मधुसूदन बंसल, रा. उ. मा. वि., परबतसर, नागोर; मनमोहन झा, नागरवाड़ा, बांसवाड़ा; महावीरप्रसाद शर्मा, रा.प्रा वि., गोरीर, झुंझुनू; मुख्तार टोंकी, रा.उ मा.वि., नागोर; मोडसिंह मृगेन्द्र, गाँव पोरिया, वाया चारभुजा, उदयपुर; योगेन्द्रसिंह भाटी, रा.उ.मा. वि.

सेमलवाड़ा, डूंगरपुर; रघुवीरसिंह करुण; रफीक ग्रहमद उसमानी, रा. उ. मा. वि., कुचामन सिटी; रविशंकर भट्ट, शिक्षा प्रसार अधिकारी, बनेड़ा, भीलवाड़ा; राजेन्द्र बोहरा, रा उ. प्रा. वि. रेजीडेन्सी, जोधपुर; रामस्वरूप परेश, बी.एल प्रा वि., बगड, पाली; रामेश्वर दयाल श्रीमाली, रा. उ मा. वि., सांचू, जालोर; विश्वेश्वर शर्मा, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर; शंकर 'क्रंदन', रा मा. वि., ग्रम्बामाता, उदयपुर; श्रीमती ग्राशादेवी शर्मा, द्वारिकादास बालिका विद्यालय, मलसीसर, झुंझुनूं; श्रीमती वीणा गुप्ता, १२/४५, भैरुगली, रामपुरा, कोटा; सांवर दइया द्वारा कानीराम सागरमल, दयानन्द मार्ग, बीकानेर; सुषमा चतुर्वेदी, ई-गांधीनगर, जयपुर-४; सोहनलाल गागिया रा. उ. मा. वि. नसीराबाद; हनुमान प्रसाद बोहरा, भारत प्रिंटिंग प्रेस, टोंक; मदन याज्ञिक, पीरामल उ.मा.वि., बगड़, पाली ।